आज के कवि

(आलोचनात्मक अध्ययन)

लेखक

ललितमोहन अवस्थी,
एम० ए०

प्रकाशक

करेन्ट पब्लिशर्स,
दि माल, कानपुर

स्व० पूज्य पिता जी की

पुण्य स्मृति

एवं

तपस्विनी माँ के

श्री-चरणों

में

क्रम-सूची

आत्म-कथन

मानव बुद्धि ने सत्य-दर्शन और ज्ञानार्जन के तीन मार्ग ग्रहण किए हैं—अनुभूति, विवेक और तर्क, जिनसे कला, विज्ञान और दर्शन की सृष्टि हुई है। बुद्धि या ज्ञान के इन तीनों ही रचना-स्वरूपों में सत्य की खोज और प्रतिष्ठापना ही प्रधान रही है—उस सत्य की जो जीवन का आनन्द है और जिसका लक्ष्य जीवन का कल्याण है। एक प्रकार से आनन्द ही कल्याण है, क्योंकि वह मानव के भीतर आत्म-संतोष और पूर्णत्व की भावना का विकास करता है। मानव का समस्त इतिहास प्रकृति पर विजय और भौतिक तथा मानसिक सुख सुविधाओं के उत्तरोत्तर विकास का, अर्थात् पूर्णत्व की प्राप्ति का इतिहास है, जिसके साक्षी कला, साहित्य, विज्ञान और दर्शन हैं।

इस आनन्द के दो स्वरूप हैं—भौतिक और आत्मिक। भौतिक आनन्द का सम्बन्ध जीवन रक्षा और पार्थिव सुख से है। और आत्मिक आनन्द का मानसिक सुख से। किन्तु मानसिक सुख की प्राप्ति के पहले जीवन रक्षा का ही संघर्ष प्रधान और मुख्य रहा है। क्योंकि जीवन या प्राण की रक्षा ही मन के अस्तित्व का मूलाधार है। इसी लिए कला, विज्ञान और दर्शन मे जीवन या प्राण की रक्षा के सत्य निरूपित हुए हैं। अस्तु, भौतिकवाद का वैज्ञानिक जीवन दर्शन ही मानव समाज के विकास का मुख्य आधार है, जिसका चरम लक्ष्य उसी 'आनन्द' और 'कल्याण' में समाया हुआ है।

कविता भी सत्य और ज्ञान का एक स्वरूप है, माध्यम है। उसका भी उद्देश्य भौतिक आनन्द की उपलब्धि में सहयोग प्रदान कर आत्मिक आनन्द के लक्ष्य की प्राप्ति है। तभी तो उसके तीन आदर्श माने गए हैं—सत्य, शिव और सुन्दर। सत्य सदैव सुन्दर है, और सुन्दर सदैव कल्याणकारी। अस्तु सत्य की स्थापना, सुन्दर का निरूपण और कल्याण की प्राप्ति—कविता के यही तीन दायित्व हैं।

नयी कविता—किसी भी वस्तु की परिभाषा उसके स्वरूप और चरित्र का विश्लेषण मात्र होती है। स्वरूप और चरित्र पर वाह्य शक्तियों और प्रकृति का प्रभाव होता है। इसीलिए युग की परिस्थितियों के अनुसार ही मान्यतायें और परिभाषायें बदला करती है। आज की कविता "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" के चौखटे में पूरी नहीं बैठती। क्योंकि 'रस' के स्वरूप और चरित्र को वाह्य शक्तियों और युग की परिस्थितियों ने बदल दिया है, विकृत कर दिया है। 'रस' रूढ़ि बन गया है। और रूढ़ि आज की कविता नहीं है, निस्सन्देह नहीं है। क्योंकि यह विचार-प्रधान युग है। आज कविता को 'रस' की मदिरा की चाह नहीं है, उसे 'विचार' के बल की आवश्यकता है।

मै अपने कथन को और स्पष्ट करता हूँ।

इस तथ्य से कौन इन्कार कर सकता है कि हम सब एक वर्ग-समाज और वर्ग-विश्व मे रह रहे है। वर्ग का आधार आज के शब्दों में 'पूंजी' है, जो मानव-श्रम और प्रकृति का संयुक्त स्वरूप है और जो मानव-कल्याण के लिए अन्य आवश्यक पदार्थों के उत्पादन मे लगी हुई है। पूंजी का आधिपत्य एक विकट समस्या है। चूंकि उसका सम्बन्ध मानव के भौतिक सुख से है, इसीलिए समाज के तथाकथित "प्रभु" लोग सदा से ही उस पर अपना एकाधिपत्य रखने और शेष समाज को वंचित बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे है। इसी लिए प्रत्येक वर्ग के अपने हित है, स्वार्थ है। हित या स्वार्थ निस्सन्देह संघर्ष को जन्म देता है। इसीलिए समाज और विश्व मे जब तक वर्ग है, तब तक यह संघर्ष बना ही रहेगा। हमे इस वर्ग भेद को मिटाना है। यही कार्य आज हमारे समाज और सम्पूर्ण विश्व का शोषित-वर्ग कर रहा है, जिसके दो लक्ष्य हैं—शोषक शक्तियों का विनाश और शोषित का उत्कर्ष, ताकि सब कुछ सम रहे। यह कोई आकस्मिक क्रिया नही है। इस परिवर्तन के सम्पन्न होने की अवधि लम्बी होती है। इस अवधि मे वर्ग अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए

पारस्परिक सहयोग और शांति के वातावरण में रह सकते हैं। आज हम इसी पृष्ठभूमि और वातावरण में रह रहे हैं। संघर्ष और सहयोग ही, जिनका लक्ष्य स्थायी-शांति, मानव-कल्याण और नवीन भविष्य की रचना है—आज व्यष्टि और समष्टि के जीवन के दो मूल विचार-मंत्र हैं। इसीलिए यह विचार-प्रधान युग है। और कविता इन्हीं विचारों से अपने स्वास्थ्य और सौंदर्य-श्री के लिए जीवन-शक्ति ले रही है। यही नहीं, आज कविता एक अस्त्र बन चुकी है। वह 'शोषक' के 'शोषित' पर होने वाले आक्रमण में 'शोषित' के बचाव का और फिर 'शोषित' के प्रत्याक्रमण का अस्त्र है। बचाव में कविता सहयोग और शांति का अस्त्र है और प्रत्याक्रमण में क्रांति का। यही आज की कविता का मुख्य स्वरूप है।

यानी हम कह सकते है कि आज की कविता पर आज की भौतिक परिस्थितियों का पूरा प्रभाव है। भौतिक परिस्थितियाँ व्यक्ति को बनाती हैं और उसके चिन्तन के स्वरूप को निर्धारित करती हैं। समाज और जीवन के भौतिक तथ्य तथा आवश्यकतायें वह शक्ति है जो व्यक्ति के चिन्तन, मनन, विचार, भाव आदि की दिशा, स्वरूप और गति का गठन करती है। जीवन का यथार्थ ही अनुभूति का प्रेरक होता है। समाज का जब जैसा आर्थिक ढाँचा होता है, यानी उत्पत्ति के साधनों व स्रोतों तथा उत्पादनकर्ताओं मे या श्रम और सम्पत्ति में जब जैसे सम्बन्ध होते है, तब समाज की व्यवस्था, राजनीति, धर्मनीति, साहित्य और कलायें भी वैसी ही होती है, उससे पृथक नहीं। अर्थात्, समाज की अर्थनीति ही सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि के स्वरूप की रचना करती है। किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास का यदि हम अध्ययन करें तो इस कथन की सत्यता जान लेंगे। विचार व्यक्ति से अलग नहीं किये जा सकते। उसी प्रकार व्यक्ति को समाज की भौतिक परिस्थितियों से अलग नही किया जा सकता। इसीलिए साहित्य की वास्तविक परख तभी हो पाती है जब हम उसे जन्म देने वाले व्यक्ति और उस व्यक्ति को बनाने वाली

भौतिक परिस्थितियों को जान लें। साहित्य के इतिहास का यही तो कार्य है। हम साहित्य को व्यक्ति से या समाज के यथार्थ से अलग रख कर नहीं परख सकते। **इसलिये आज की कविता, पिछले सभी युगों की भांति ही, सामाजिक यथार्थ की ही उपज व रचना है जिसे वर्तमान अर्थनीति ने ही रूप प्रदान किया है।**

किन्तु इसके साथ ही यह बात ध्यान मे रखने की है कि वर्ग-समाज के विभिन्न युगों मे समाज में दो शक्तियों का अस्तित्व पाया गया है—एक तो अधिकार स्थापित करने वाली और दूसरी अधिकार में की जाने वाली। एक वर्ग ऐसा है जो दूसरों के श्रम और कमाई पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करता है। यह वर्ग असद्-प्रवृत्तियों और पशुत्व का प्रतीक होता है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह शोषण, दमन मुनाफाखोरी, अनैतिकता और युद्ध को जन्म देता है। जिस समाज ने सबके लिए भौतिक-सुख-सुविधाओं का निर्माण कर इस वर्ग को नष्ट कर दिया है, वहाँ यह जीवन-विरोधी परिस्थितियाँ नहीं हैं। किन्तु जहाँ समाज पर ऐसी आसुरी-शक्तियाँ हावी है जो दूसरों के खून-पसीने पर अपनी तोंद फुला रही है वहाँ घोर यातना, यंत्रणा और मृत्यु का पंजा जमा हुआ है। इसीलिए आज ऐसे सभी देशों और जातियों में तीव्र संघर्ष और टकराव पाये जाते है। राजनीति मे इसी आसुरी शक्ति के विभिन्न नाम हैं—पूंजीवाद, साम्राज्यवाद और फासिस्तवाद। यह आसुरी-शक्ति साहित्य मे भी अपनी काली छाया डालती रहती है। इसीलिए वर्ग-समाजों के अस्तित्व काल मे दो प्रकार के साहित्य का सृजन हुआ है—एक वह जो पशुत्व का प्रतीक रहा है और जो शोषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता रहा है या उसके जीवन-विरोधी, समाज-विरोधी उद्देश्यों को सहयोग देता रहा है। और दूसरा वह जो देवत्व का प्रतीक रहा है, जिसने छटपटाती हुई संत्रस्त मानवता का प्रतिनिधित्व किया है, और जो जन-जन की मुक्ति और शांति के पुनीत उद्देश्यों को सहयोग देता रहा है। ऐसा इस लिए हुआ है कि वर्ग-समाज मे प्रत्येक वर्ग के जीवन-सत्य

भिन्न रहे हैं यद्यपि हर वर्ग के साहित्यकार सत्य की दुंदुभी बजाते रहे हैं किन्तु शोषक वर्ग के जीवन-सत्य शोषित-वर्ग के जीवन सत्यों से पूर्णतः भिन्न रहे है। शोषक वर्ग के जीवन-सत्य है—अधिकार को बनाये रखना और उसके लिए दमन शोषण का सहारा लेना, जिसके लिए वह विभिन्न प्रकार के जाल रचता है—धर्म का, यौन-तृष्णा का, पूंजी के छल-प्रपंच का। और शोषित वर्ग के जीवन-सत्य हैं—भूख, उत्पीड़न, गुलामी, दोहन, जिससे मुक्ति पाना उसके लिए अनिवार्य होता है। तभी वह क्रांति का सहारा लेता है। यही वर्ग-साहित्य का आधार और वास्तविकता है जो युग की परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक वर्ग-समाज के युग में साहित्य मे प्रगट हुआ है। वर्ग-साहित्य की प्रयोजनशीलता भी यही रही है और है।

आलोचक का दायित्व—इसलिए वर्ग-समाज मे साहित्य की परख या कविता के स्वरूप को पहचानने के लिए हमें शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के पृथक जीवन-सत्यों का ज्ञान तथा अपनी सहानुभूति का स्पष्टीकरण आवश्यक होता है। आलोचक का यही महान दायित्व है। उसका कर्तव्य केवल गुण-दोषों की व्याख्या नहीं है और न केवल कला-पक्ष व भावपक्ष की विवेचना करना है। बल्कि इससे भी आगे चल कर जीवन के पुनीत आदर्शों और सत्यों की रक्षा और स्थापना के लिए सही मार्ग-दर्शन करना उसका कर्त्तव्य है। संत्रस्त मानवता की मुक्ति उसका श्रेय है, पशुत्व का संहार और देवत्व का विकास उसका प्रेय। आलोचक तो वह माली है जो अपनी वाटिका से पुष्प-पौधों का विकास रोकने वाली और रस चूसने वाली झाड़ियों को समूल उखाड़ा करता है और पौधों की जड़ें गहरी करने के लिए उनको भी काट-छाँट किया करता है। ऐसा वह केवल एक उद्देश्य से करता है—वह अपनी वाटिका को जंगल नहीं, उद्यान बनाना चाहता है। आलोचक सृष्टि भी करता है, संहार भी। किन्तु वह संहार भी सृष्टि के लिए ही करता है, यानी संहार में सृष्टि की भावना सन्निहित रहती है।

यहाँ पर मैं तीन-चार अन्य सामयिक समस्याओं की चर्चा भी प्रासंगिक और अनिवार्य समझता हूँ, क्योंकि वे आज हिन्दी कविता पर अपना प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव डाल रही है। वे समस्यायें यह है—१, साहित्य एवं काव्य में बुद्धितत्व और हृदयतत्व, २, यथार्थ और आदर्श ३, प्रचार और कला। और अन्तिम समस्या है—हिन्दी साहित्य या काव्य में गतिरोध। (?)—(यह प्रश्न चिन्ह मैंने इस लिए लगाया है कि मुझे इस नाम की कोई समस्या नजर नहीं आती।) प्रथम तीनों समस्यायें कोई पृथक समस्यायें नहीं है। वे एक ही है, यानी एक ही प्रश्न के तीन पहलू है, एक ही बात को तीन तरह से प्रकट करने के ढँग है।

[१] बुद्धि और हृदय—बुद्धितत्व और हृदयतत्व की समस्या बहुधा अभिजातवर्ग के साहित्यकारों की उपज हैं। वे अक्सर इस प्रकार की चर्चायें छेड़ कर या समस्यायें खड़ी करके (?) जन-वर्ग के ध्यान को और चिन्तन को मोड़ने की चेष्टा करते हैं—उस ओर, जहाँ जन-वर्ग अपनी मुक्ति के उपाय न सोच सके। शोषक-वर्ग के साहित्यकार व विचारक शोषित-वर्ग के कलाकारों पर इन्हीं कुंठित अस्त्रों का प्रयोग किया करते हैं। इसलिए यह भी एक आवश्यक बात है कि जन-कलाकार इन चालों की ओर पूरा ध्यान रखें और विरोधी-पक्ष को आक्रमण का अवसर प्रदान न करें।

यह एक नितांत सत्य है कि यदि मानव के पास बुद्धि न होती तो वह पशु ही रहता, मानव नहीं कहला सकता था। बुद्धि ने ही तो अनुभूति, विवेक और तर्क के द्वारा मानव को प्रगति की इस सीमा तक पहुँचाया है। समस्त ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य, दर्शन आदि मानव-बुद्धि की ही उपज हैं। यहाँ तक कि "ईश्वर" को भी मानव-बुद्धि ने ही जन्म दिया है। हृदय तो केवल मानव शरीर का वह अंग है जो रक्त-शोधन और रक्त-संचार का कार्य करता है, इसके आगे कुछ नहीं। चिन्तन, मनन, कल्पना, स्मरण, आदि सब क्रियायें तो बुद्धि की हैं जिसे हम "मन" भी कहते हैं। इसलिए साहित्य या कविता की उपज बुद्धि से ही होती है, हृदय से

नहीं। क्या आप ऐसे किसी कवि की कल्पना भी कर सकते हैं जिसके शरीर में बलिष्ठ हृदय तो हो, किन्तु बुद्धि न हो और वह कविता करता हो ? यह सोचना भी कैसी हास्यास्पद बात है। फिर यह हृदय और बुद्धि का चक्कर कैसा ? यह थोथा सिद्धान्त है। बात केवल इतनी है कि मानव की बुद्धि एक जलाशय के समान है जिसमें तरंगे उठा करती हैं। तरंगे अपने आप नहीं उठतीं। वायु या अन्य कोई बाहरी पदार्थ जब जलाशय में प्रवेश करता है, तभी तरंगें उठती हैं। मानव-बुद्धि को भी जब बाहर से कोई प्रेरणा (Stimulus) मिलती है तभी अनुभूति जागती है और भाव-तरंगे उठती हैं। उन्हीं क्षणों में कविता या साहित्य जन्म लेता है। अनुभूति जितनी ही गहरी होगी, भाव-तरंगे उतनी ही अधिक और तेज होंगी। तब कविता में मार्मिकता और प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा। अनुभूति की गहराई के लिए प्रेरक शक्तियों की स्थूलता और तीव्रता आवश्यक है। तेज आंधी में या किसी स्थूल पदार्थ के आवेगपूर्ण प्रवेश के समय ही जलाशय मे तीव्र प्रकम्पन होता है, अन्यथा वह मंथर रहता है। मंथर प्रकम्पन मे जलाशय की ऊपरी सतह में ही तरंगें उठती है और तीव्र प्रकम्पन मे नीचे का तल तक तरंगित हो उठता है। वास्तव मे जब मानव बुद्धि का तल तरंगित हो उठता है तब कविता "कविता" होती है। बुद्धि की केवल सतह तरंगित होने के समय कविता में गहराई नहीं आती। जन-कलाकार इस तथ्य को समझ लें। क्योंकि यही वह तथाकथित "हृदयतत्व" का अस्त्र है जिससे शोषक-वर्ग साहित्य के क्षेत्र मे हम पर आक्रमण करता है।

[२] प्रचार और कला— दूसरी समस्या, अर्थात् प्रचार और कला की समस्या भी इसी से सम्बन्धित है। वस्तुतः आज तक का समस्त साहित्य, जिसमे काव्य भी सम्मिलित है, एक प्रचार मात्र है। विचार भाव या ज्ञान के प्रदर्शन का ही नाम प्रचार है। जितनी दूर तक और जितने अधिक लोगों तक हम अपने विचार पहुँचा सकें (चाहे जिस रूप या माध्यम से) प्रचार का स्वरूप उतना ही बड़ा होगा। साहित्य केवल

विचार, भाव या ज्ञान प्रदर्शन ही तो है। इसलिए प्रचार से वह अलग कहाँ है? साहित्य का रूप ही प्रचार है और उसी मे उसकी सार्थ ता है। शोषक-वर्ग के विचारक जब यह कहते हैं कि वास्तविक कला हृदय से उपजती है और बुद्धि तो प्रचार को जन्म देती है, तब उनका आक्रमण वही है, जो मैं ऊपर बतला चुका हूँ। वे इस प्रकार शोषित वर्ग के साहित्य को हीन सिद्ध करना चाहते हैं ताकि समाज में उसकी महत्ता नष्ट हो जाये। प्रचार-प्रकाशन के साधनों पर अधिकार जमा कर वे बहुत कुछ इस दिशा में सफल भी हो जाते हैं। किन्तु यदि हम उनके कथन पर विचार करें तो पता चलता है कि वह कितना सारहीन है। कला हृदय से नहीं, बुद्धि से ही जन्म लेता है। बुद्धि का तल तरंगित हो जाने के समय जो साहित्य रचा जाता है उसे वास्तविक "कला" की संज्ञा प्राप्त हो जाती है। बुद्धि की ऊपरी सतह से जो साहित्य रचा जाता है, उसमें वह कलात्मकता नहीं आने पाती, क्योंकि उसमें अनुभूति की गहराई की कमी रहती है। ·सलिए साहित्य या कविता में गहन कलात्मकता लाने के लिए जीवन और समाज की गहराई तक प्रवेश करना पड़ता है। इसके लिए गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन भी आवश्यक है। शोषित वर्ग के साहित्यकार कोरी बौद्धिक सहानुभूति के द्वारा साहित्य में गहन कलात्मकता नहीं ला सकते। यही कारण है कि मध्यवर्ग के बहुत से बुद्धिजीवी जब शोषित-वर्ग के प्रतिनिधि होकर उसके लिए साहित्य रचते हैं तो वास्तविक अनुभव तथा जीवन के गहन-यथार्थ से दूर रहने की वजह से उनकी रचनाओं में कला की कमी खटकने लगती है। यह ध्यान देने बात है।

[३] यथार्थ और आदर्श—इसी प्रकार यथार्थ और आदर्श का झगड़ा है। शोषक वर्ग के विचारक जब इस समस्या को सामने लाते हैं, तब इसका भी वही उद्देश्य होता है जो विगत समस्याओं के बारे में मैंने बतलाया है, अर्थात शोषित वर्ग के उभार को दबाना। यथार्थ वास्तविकता है और आदर्श कल्पना। यथार्थ वर्तमान है और आदर्श भविष्य।

शोषक वर्ग के विचारकों का उद्देश्य होता है कि आदर्श का परदा सामने डालकर जनवर्ग का ध्यान जीवन की वर्तमान वास्तविकताओं से हटा दिया जाये। इससे क्रांति की सम्भावनायें नष्ट हो जाती हैं और कुछ समय के लिए शोषकों को रक्तपान करने तथा अपने नाखून पैने करने का अवसर मिल जाता है। गुलामी और शोषण की हालत में तो शोषित वर्ग का आदर्श है—मुक्ति और समता, अर्थात् भौतिक आनन्द की प्राप्ति। जब इन आदर्शों की स्थापना जीवन में हो जाए, अर्थात् जब मुक्ति और समता का भविष्य वर्तमान यथार्थ बन जावे तब आत्मिक आनन्द के दूरागत आदर्शों की प्राप्ति के लिए समस्त समाज एक होकर एक सी सुख सुविधायें और अवसरों का उपभोग करते हुये अग्रसर हो सकता है। भौतिक आनन्द के आदर्शों के पूर्व ही आत्मिक आनन्द के आदर्शों के गीत गाना एक वर्ग-समाज में तो अपराध ही माना जाएगा, क्योंकि वह तो बिना वह वातावरण बनाये जिसमें उन आदर्शों की प्राप्ति सम्भव होती है उन आदर्शों से लव लगाना सिखाता है। इसका तो यही मतलब हुआ कि भविष्य मे ५-६ प्रकार के व्यंजन खाने के लिये तुम आज कल भूखे बने रहो, यानी मर जाओ। न रहोगे तुम, न रहेंगे आदर्श। यही शोषक वर्ग का षडयंत्र है।

[४] काव्य में गतिरोध ?—अब मै अन्तिम समस्या को लेता हूँ—वह है गतिरोध की। अक्सर इधर-उधर काव्य में (या साहित्य के अन्य क्षेत्रों में) कभी-कभी बड़े नामधारी साहित्यकारों द्वारा गतिरोध की चर्चा होती रहती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि मठाधीशों या गद्दी धारियों को छुटभैयों का उठना और बढ़ना अच्छा नहीं लग रहा है। शायद उन्हें कुछ अपने लिए खतरा मालूम दे रहा है। इसीलिये नई पीढ़ी की प्रगति और विकास की रफ्तार पर परदा डाल कर गतिरोध की बात की जाती है। वस्तुतः न तो विचार-क्षेत्र में और न निर्माण-क्षेत्र में कोई गतिरोध है। हाँ, मुझे लगता है पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों की कलमें जैसे पिटारियों में बन्द हो गई हैं। युग की परिस्थितियों में परि-

वर्तन घटित हो जाने की वजह से प्रगति और रफ्तार के इस युग से वे मेल नहीं खाते। रूढ़ि और संस्कार उनमें इतने गहरे हैं कि जमाना बदल जाये, वह खुद न बदलेंगे। इसलिये वे जैसे अपनी प्राचीन ख्याति, सम्मान और कृतियों पर जुगाली कर रहे हैं और समझते हैं साहित्य में गतिरोध आ गया है। यह बड़ा घातक दृष्टिकोण है। नयी पीढ़ी इससे भ्रमित होती है। सम्भवतया जिसे गतिरोध कहा जा रहा है वह विभ्रम ही है। यह विभ्रम भी दो क्षेत्रों में अधिक है—एक तो पुराने और बीच वाले (त्रिशंकु) साहित्यकारों में और दूसरे शोषक-वर्ग के प्रतिनिधियों में। प्रगति और परिवर्तन की तीव्रता ने यह विभ्रम उत्पन्न किया है। जैसे हम चकित हैं, किस रास्ते पर जायें। दूसरे यह विभ्रम और भटकाव जान बूझ कर शोषक-वर्ग की ओर से पैदा किया जा रहा है और गतिरोध की चर्चा की जा रही है। साहित्य की प्रगति और रक्षा के लिये हमें इस प्रचार से बचना है। क्योंकि हो सकता है कि अमरीका की तरह यहाँ भी "भूतलेखकों" को पैदा किया जाये।

अभिव्यंजना—यह सब कुछ नयी कविता के भाव-पक्ष के सम्बन्ध में था। अब इसके साथ ही उसके कला-पक्ष पर भी विचार करना आवश्यक है। वस्तुतः भाव और विचार ही काव्य की आत्मा और प्राण होते हैं, कला तो बाहरी परिधान और सजावट का नाम है। उसका सम्बन्ध भावों की अभिव्यक्ति और भाषा से है। अभिव्यक्ति की प्रभावोत्पादकता और उत्कृष्टता के लिये काव्य में अलंकारादि का पूरा महत्व और आवश्यकता है। किन्तु बात इतनी ही नहीं है। मुख्य प्रश्न यह है कि भाव और कला में प्रधानता किस तत्व की होनी चाहिये? इसका एक ही उत्तर है— भाव तत्व की। कला तो गौण है। अभिव्यक्ति तथा उसकी शैली और भाषा सदैव भाव तथा विचार की अनुगामिनी होनी चाहिये, आगे चलने वाली नहीं। यदि हम कला को भाव के आगे रख कर चलेंगे जैसा कि अभिजातवर्गीय साहित्यकार करते हैं, तो हम बैल के आगे रथ जोतेंगे। अभिव्यंजना को समस्या न बनाया जाय। अनुभूति की

गहनता और वास्तविकता ही अभिव्यंजना की जड़ है। हमें जड़ को सींचना और मजबूत बनाना है। उसी से अभिव्यंजना का सौंदर्य बढ़ता है। अनुभूति की दुर्बलता को कला के आवरण में ढकना व्यर्थ है। अभिव्यंजना जितनी ही वास्तविक, स्वाभाविक, प्रत्यक्ष और सरल होगी, काव्य के उद्देश्यों को आज वह उतनी ही खूबी से पूरा कर सकेगी। जटिलता और दुरुहता काव्य के दोष हैं। युग की परिस्थितियों ने कला के स्वरूप को भी बदल दिया है। अब क्लिष्टता और रहस्य का नाम कला नहीं है। बल्कि सरलता, स्वाभाविकता और बोधगम्यता का नाम कला है। कवि के सामने सर्व प्रथम निश्चय तो यह होना चाहिए कि वह किसके लिए लिख रहा है—'कुछ के लिए' या 'बहुत के लिए'। यदि उसकी नजर इस माने में बिल्कुल साफ है कि वह 'कुछ' के लिए नहीं, बल्कि 'बहुत' के लिए, यानी जन-साधारण के लिए लिख रहा है, तो उसे नीचे उतर कर, धरती पर आकर अपनी अभिव्यंजना और भाषा को जन-साधारण की बौद्धिक चेतना और भाषा में ढालना होगा। युग के प्रतिनिधि नये कवियों ने इस तथ्य को समझा और स्वीकार किया है—यह नयी कविता का महान गुण है। किन्तु अब भी इस दिशा में बहुत कमी है। नये कवियों को जन-साधारण के कला-स्वरूपों (Art-forms) को भी पकड़ना चाहिए। नयी कविता की सोद्देश्यता और प्रयोजनशीलता इसी में पूरी होगी।

आज हिन्दी कविता का रथ नयी पीढ़ी के कवि खींच रहे हैं। उसके पहियों में भावी सुख-शाँति, तथा गीत और लय के मधुर घुंघरू बोल रहे हैं। हम पुरानी पीढ़ी के प्रति कृतज्ञ हैं कि वे इस रथ को यहाँ तक खींच लाये। अब उसकी बागडोर इन नये कवियों के हाथों में है। पुरानों से तो वह छिन चुकी है। नये कवि हिन्दी कविता को नवीन रूप सजा कर रहे हैं, नये परिधान और कलेवर जुटा रहे हैं। क्योंकि वह अपने जीवन साथी—"जनता जनार्दन" के गलबांही डाल चुकी है। नयी पीढ़ी के कवि, इस रथ को मुक्ति, सुख शांति और समता के राज प्रासाद

के सामने ले जाकर ही खड़ा करेंगे, ऐसी उनमें लगन और प्रतिभा नजर आ रही है। इनके बाद जो कवि आयेंगे, वे शायद इसे भविष्य के निर्माण पथ पर लेकर अग्रसर होंगे और चलते चले जायेंगे, मानव कल्याण के उच्च, उच्चतर और उच्चतम लक्ष्यों तक।

× × ×

अस्तु……यही वह मेरी चिन्तनधारा है जिसने इस पुस्तक को स्वरूप दिया है। मेरा मत है कि नयी पीढ़ी के कवियों पर यह आलोचनात्मक परिचय-ग्रन्थ लिखकर मैंने किसी अधिकार-क्षेत्र का अतिक्रमण या दुस्साहस नहीं किया है। मैंने इस कार्य को एक कर्त्तव्य मान कर किया है, समय की आवश्यकता जान कर।

यह योजना—मैंने इस पुस्तक में नयी पीढ़ी के चौदह प्रगतिशील व गैर प्रगतिशील कवियों को सम्मिलित किया है। मेरी योजना का यह पहला खंड है। मेरा इरादा है कि मैं इसी प्रकार के दो अन्य ग्रन्थ भी शीघ्र पूरे कर सकूँ। दूसरे ग्रन्थ मे नयी पीढ़ी के अन्य कवियों को और तीसरे मे हिन्दी की नयी कवयित्रियों को ही सम्मिलित करने का विचार है। कह नही सकता, योजना कब तक पूरी हो सके। एक साधनहीन व्यक्ति होने के नाते इस पुस्तक की तैयारी तथा प्रकाशन मे असाधारण विलम्ब हो गया, जिसके लिये मै क्षमा प्रार्थी हूँ। इस योजना पर अक्टूबर सन् १६५२ में कार्य आरम्भ किया था। यह पुस्तक सन् १६५३ मे ही प्रकाशित हो जानी चाहिए थी। किन्तु न हो सकी, इसका मुझे खेद है। इस पुस्तक में सम्मिलित कवियों के अतिरिक्त नयी पीढ़ी के अभी बहुत से ऐसे कवि शेष है, जिन पर इसी प्रकार विचार करना आवश्यक है। इनमें से कुछ को, जैसे सर्वश्री नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, गिरजा कुमार माथुर, रामदयाल पांडेय, मेघवर्मा 'मुकुल', धर्मवीर भारती, आदि को मैं पहले खड में ही रखना चाहता था। मुझे यह सूचित करते हुये खेद है कि इनमें से दो-तीन कवियों से तो मैं कई-कई पत्र भेजने के बाद भी कोई उत्तर न पा सका, और मुझे उनमें सहयोग

व साहित्यिक-सौहार्द की भी न्यूनता प्रतीत हुई। नागार्जुन और शमशेर बहादुर सिंह को अन्तिम समय तक इसी खंड में सम्मिलित करना चाहा, किन्तु आवश्यक सामग्री न मिल पाने से न कर सका। मैं उनसे क्षमा प्रार्थी हूँ। सूची को पूरा करने की वजह से इस पहले खंड में कुछ ऐसे कवियों को ले लेना पड़ा जिन्हें मैं दूसरे के लिए सोचे हुए था। इसलिये जो कवि मित्र पहले खंड में न आ सके या जो अब द्वितीय खंड में आयेंगे वे अपनी प्रतिभा को किसी प्रकार भी आगे पीछे न समझें। सभी कवि मेरी योजना के समान अंग हैं। इस पुस्तक में कवियों के क्रम के सम्बन्ध में भी मैं किसी नियम का पालन नहीं कर सका हूँ। यह मेरी कमजोरी और दोष है। इसके लिए मैं सभी कवियों से क्षमा प्रार्थी हूँ। दूसरे खंड की तैयारी के लिए जो कवि पहले खंड से बच गए हैं उनके अतिरिक्त सर्वश्री नरेश मेहता, गोपाल प्रसाद व्यास, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिधर गोपाल, चिरंजीत, देवराज 'दिनेश', शिवसिंह 'सरोज', मानसिंह 'राही', रामकेर, श्यामसुन्दर तिवारी 'राजा' कृष्ण कुमार त्रिवेदी 'कोमल' आदि बहुत से कवि हैं। इसी प्रकार श्रीमती विद्यावती 'कोकिल', सुमित्राकुमारी सिनहा, चन्द्रमुखी ओझा सुधा', शांति एम० ए०, शकुन्तला माथुर प्रभृति नयी कवयित्रियों की भी काफी लम्बी सूची है। यदि मनोवांछित सहयोग हर एक से मिलता रहा तो योजना शीघ्र पूरी हो जायगी, ऐसा विश्वास है।

कवियों का चयन—कवियों के चुनाव के आधार के बारे में भी प्रश्न किए जा सकते हैं। इसके लिये मेरा स्पष्टीकरण यह है कि नयी कविता के प्रत्येक अंग और सम्पूर्ण स्वरूप को सम्प्रति रूप में साधारण पाठक के सामने रखने के लिए मैंने नयी पीढ़ी के लगभग प्रत्येक वर्ग व विचारधारा के प्रतिनिधि कवियों को लेना चाहा है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में, या सन १६४० के आसपास से, या पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में जो नये कवि हिन्दी में आये हैं यानी जिन्होंने कवि-सम्मेलनों, पत्र-पत्रिकाओं और अपने कविता-संग्रहों के प्रकाशन के द्वारा अपनी प्रतिभा का

पर्याप्त प्रदर्शन किया है तथा यदाकदा आलोचना साहित्य में जिनके नामों का उल्लेख होता रहा है, मैंने उन सभी कवियों व कवयित्रियों को अपनी योजना का अंग बनाना चाहा है। आगे की पीढ़ी का संकेत मिल सके, इसलिए एक-दो बिलकुल नये कवियों को भी ले लिया है। लोकभाषाओं के भी दो कवियों को लिया है। किन्तु मैंने कोई कोष तैयार करने की चेष्टा नहीं की है। यह कार्य इतिहासकार का है। इसलिये निश्चित है कि तमाम नये कवि इस योजना से बाहर रह जायेंगे। यह तो वर्तमान हिन्दी कविता की धारा और स्वरूप को पहचानने में सहायता देने का प्रयास मात्र है। विश्वास है मेरी असमर्थताओं को जान कर उदारजन मुझे क्षमा करेंगे।

मेरी इच्छा थी कि नये कवियों के सम्बन्ध में भी कुछ बातें यहाँ कहता। किन्तु बाद में यह सोच कर कि वह अनावश्यक न प्रतीत हो, यह इरादा छोड़ दिया। क्योंकि, यहाँ तो यही बताना अधिक जरूरी था कि मैंने इन सभी कवियों को किस प्रतिमान पर परखा है। वैसे उनके सम्बन्ध में यथास्थान तो बहुत-कुछ लिखा ही है। मैंने जिन समस्याओं का संकेत ऊपर किया है उनके अतिरिक्त कुछ अन्य समस्याओं, जैसे— धर्म और साहित्य, राजनीति और साहित्य, सेक्स और साहित्य आदि पर भी प्रसंगानुसार यथास्थान कुछ विचार प्रकट किये हैं। चाहता यही था कि यह दिखला सकता कि नयी कलम आज जिन हाथों में है उनमें से कौन नये इन्सान की रचना में संलग्न हैं और कौन नहीं। आशा है, इस पर कभी अलग से कुछ लिखूंगा।

कृतज्ञता-ज्ञापन—अन्ततः, जो कि मुझे प्रथमतः करना चाहिये था, मैं उन सभी कवियों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने योजना के महत्व को जान कर कार्य की पूर्ति में मुझे सहयोग दिया। मैं अपने अभिन्न, सहृदय भावुक और विद्वान मित्र डाक्टर कालिका प्रसाद मेहरोत्रा एम० बी० बी० एस० के प्रति हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूँ। पुस्तक की तयारी में उनके अमूल्य सुझावों और परामर्श ने मुझे सहायता दी है। यदि मैं यह कहूँ

कि उनके सहयोग से मेरा यह स्वप्न सत्य हुआ है, तो अत्युक्ति न होगी। मैं अपने अन्य मित्र ठाकुर रामप्रताप सिंह के सहयोग के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी इस योजना के महत्व को भलीभाँति समझा है। राणा जयगोपाल सिंह जी ने पुस्तक की पाण्डुलिपि टाइप कर मुझे मदद दी है। अस्तु, मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ।

इस पुस्तक को आलोच्य कवियों, साहित्य के विद्यार्थियों, काव्य-प्रेमियों और आलोचकों के सन्मुख रखते हुए मुझे पुलक और गर्व का अनुभव हो रहा है। उनकी सम्मतियों व आलोचनाओं से, जिसका मैं हृदय से आकांक्षी हूँ, मुझे बल मिलेगा।

३६/१७, राममोहन का हाता,
कानपुर।
१० जनवरी, १९५४

— ललितमोहन अवस्थी

१

केदार

"वस्तु जगत की मानसिक प्रक्रिया को कवि अपनी भाषा द्वारा कविता के रूप में व्यक्त करता है। किन्तु मानसिक प्रक्रिया को कवि के व्यक्तित्व से परे समझना भूल होगी।......कवि अथवा उसका व्यक्तित्व समाजनीति व अर्थनीति का ही अंग है।"

केदारनाथ अग्रवाल,
एडवोकेट,
बाँदा (उ० प्र०)

★

क्रांति की ललकार लगाने वाले, शोषितों और दलितों को हिमालय सा दृढ़ और महान बनाने वाले तथा 'नींद के बादलों' को दिन के लाल सबेरे के साथ ओझल करके जन-मन के बीच 'युग की गंगा' प्रवाहित करने वाले प्रशस्त कवि श्री केदार प्रगतिशील काव्य-भवन के एक प्रमुख स्तम्भ हैं। उन्होंने हिन्दी कविता को न केवल जन साधारण की जिन्दगी का प्रतिबिम्ब बनाया है वरन् नई जिन्दगी के निर्माण का एक पैना औजार भी।

४०-४१ वर्ष की आयु के केदारनाथ अग्रवाल (कवि का पूरा नाम यही है) का जन्म चैत्र माह, शुक्ल पक्ष द्वितीया, सम्वत् १९६८ को उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के कमासिन नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री हनुमान प्रसाद अग्रवाल एक मामूली किसान हैं। आपके पूर्वज इलाहाबाद जिले के शहजातपुर नामक स्थान के निवासी थे। आपके परिवार में आर्थिक सम्पन्नता कभी नहीं रही। कमासिन गांव की पाठशाला में ही आपकी शिक्षा प्रारम्भ हुई और वहीं से कक्षा ३ पास करने के बाद रायबरेली के सरकारी स्कूल में भर्ती हुये, जहां से कक्षा ६ पास किया। फिर कटनी से ७वां और जबलपुर से ८वां पास करने के बाद उन्होंने उच्च शिक्षा इलाहाबाद में आरम्भ की, और प्रयाग विश्व विद्यालय से बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। इसी समय आपका ध्यान वकालत की ओर गया। अतएव दो वर्ष कानपुर में रहकर आपने वकालत की शिक्षा ली और उसी को अपनी जीविका का साधन बनाया। इस समय आप बांदा में वकालत करते हैं। आपका परिवार

काफी भरा-पूरा है। आप विवाहित हैं और आपके तीन संतानें हैं जिनमें से एक बड़ी पुत्री भी विवाहित है।

केदार की मानसिक अनुभूति इतनी पैनी और कोमल है कि जब वे किशोर थे और सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तभी "शिशु" नामक बालकों के पत्र को पढ़कर स्वयं बालकों के लिये रचनायें लिखने का प्रयास किया करते थे। किन्तु उस समय न तो लिख पाते थे और न प्रकाशित ही करा पाते थे, यद्यपि हृदय में यह उत्कट अभिलाषा थी। फिर भी वह बराबर लिखते रहते थे। आपने सबसे पहली कविता सन् १९२७ में लिखी थी और कविता प्रकाशित होने का आपका स्वप्न सन् १९३० में पहली बार पूरा हुआ था जब लखनऊ की "माधुरी" के प्रथम पृष्ठ पर आपकी कविता प्रकाशित हुई थी। उस समय आपके हर्ष का ठिकाना न रहा था। आपको इतना प्रोत्साहन मिला कि आपने फिर तीव्र गति से लिखना आरम्भ किया। प्रयाग के साहित्यिक तथा सान्स्कृतिक वातावरण ने और कानपुर के तंग, गंदे और शोषणपूर्ण वातावरण ने एक ओर तो केदार की साहित्यिक प्रतिभा को विकसित किया और दूसरी ओर उनके हृदय में विद्रोह की चिनगारी उत्पन्न की।

अभी तक आप के दो कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—"युग की गंगा" मार्च १९४७ में और "नींद के बादल" सन् १९४८ में। इसके अतिरिक्त केदार की नई कविताओं का संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हो पाया है। अप्रकाशित ग्रन्थों में अभी आप के पास अनुवादित कविताओं का एक संग्रह है और "रक्तस्नान" शीर्षक नौसैनिकों के विद्रोह पर एक आल्हा भी है जो 'हंस' में प्रकाशित हो चुका है, किन्तु पुस्तक रूप मे सामने नहीं आ सका है।

कविताओं के अतिरिक्त केदार ने हिन्दी साहित्य पर विवेचना पूर्ण आलोचनात्मक लेख भी काफी लिखे हैं। जिन्होंने उनके लेख हंस पारिजात, नया साहित्य और वीणा में पढ़े हैं वे उनकी उत्कट प्रतिभा से भलीभांति परिचित होंगे। केदारनाथ ने 'अज्ञेय' की साहित्यिक

स्थापनाओं के विरोध में जो तीन लेख हंस में लिखे थे उन्होंने उन्हें आलोचना साहित्य में भी ख्याति प्रदान की है।

अपनी विचारधारा तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण को केदार ने केवल तीन शब्दों में व्यक्त किया है—"ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी।" इस प्रकार वे जीवन तथा समाज के विकास के उस मूलभूत सिद्धान्त के अनुयायी हैं जिससे आज के विश्व की करोड़ों-अरबों मेहनतकश जनता आन्दोलित और अनुप्राणित है। यद्यपि केदार किसी राजनीतिक दल से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित नहीं है, किन्तु वे साम्यवादी विचारधार को मुख्य जीवन-दर्शन मान कर उसी से प्रेरणा और शक्ति ग्रहण करते हैं। यही वह विचार धारा है जिसने उन्हें "युग के सत्यों को काव्यबद्ध करने" में सफलता प्रदान की है।

केदार पर सभी प्रगतिशील दृष्टिकोण के साहित्य का विशेष प्रभाव पड़ा है, विशेषतया हिन्दी तथा अंग्रेजी के प्रगतिशील साहित्य का, जिससे वे "बढ़े और कढ़े हैं।" और इसी साहित्य ने उन्हें काव्य तथा समूचे साहित्य के प्रति यथार्थवादी, भौतिकवादी और क्रान्तिकारी दृष्टिकोण प्रदान किया है। केदार युग-प्राण निराला को हिन्दी का सबसे बड़ा कवि मानते है क्योंकि "वे हिन्दी के ऐसे कवि हैं जिनमें प्रथम महायुद्ध के बाद की जीवन शक्ति अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के साथ परम्परा और नवीन का योग लेकर प्रवाहित हुई हैं और युग-स्वर भी सबल होकर संवरा है।"

यही वह पृष्ठभूमि है जिसने केदार को साहित्यके प्रति एक सुनिश्चित और सुदृढ़ दृष्टिकोण प्रदान किया है। केदार ने अपने प्रथम कविता संग्रह "युग की गंगा" की भूमिका में ही स्पष्टतया घोषित किया है कि कवि कल्पना लोक का वासी नहीं होता, वरन समाज की अर्थनीति ही कवि की विचार धारा और भाव धारा का निर्माण करती है। उन्होंने लिखा है–"वस्तुजगत की मानसिक प्रक्रिया को कवि अपनी भाषा द्वारा कविता के रूप में व्यक्त करता है। किन्तु मानसिक

प्रक्रिया को कवि के व्यक्तित्व से परे समझना भूल होगी। जब जैसी समाज की आर्थिक नीति होती है वैसी ही उसकी समाज नीति होती है, राज-नीति होती है, और वैसी ही संस्कृति तथा सभ्यता होती है। इसीलिये कवि अथवा उसके व्यक्तित्व को अर्थनीति का अंश ही समझना चाहिये।"

वर्तमान युग के सम्बन्ध में केदार ने लिखा है कि: "हिन्दी का यह युग समाजवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का युग है। जनता ने साम्राज्यवादी मोर्चे के विरुद्ध अपना नया बलवान मोर्चा बनाया है और साम्राज्यवादी अर्थनीति का अन्तकाल आ गया है।" इसीलिये केदार का निश्चित मत है कि, "यदि ऐसे में भी हिन्दी के वर्तमान् कवि इस जन जीवन में काव्य योग नहीं देते तो वह अपमानित और अव-हेलित होंगे। साथ ही जो साहित्यिक इस नए काव्य के विरुद्ध मोर्चा बनाकर उसे मिटा देना चाहते हैं वह असफल तो होंगे ही किन्तु उन्हें अपनी भूल का निराकरण करने के लिये 'कलंकी' की उपाधि भी लेनी होगी। आने वाली पीढ़ी के लोग उन्हें क्षमा नहीं कर सकते।" (युग की गंगा, पृष्ठ ८ ग)

केदार कविता में भावों की प्रत्यक्ष और सरल अभिव्यक्ति के हामी हैं। उनका मत है कि "अब हिन्दी कविता न तो रस की प्यासी है, न अलंकार की इच्छुक है, और न संगीत की तुकांत पदावली की भूखी है। अब वह चाहती है किसान की वाणी, मजदूर की वाणी और जन-जन की वाणी।" केदार ने सदैव ही अपनी रचनाओं में अपने इन्हीं विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। "युग की गंगा" कविता संग्रह की रचनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि: "इनमें ईश्वर का मखौल है, इनमें समाज की अर्थनीति के विरुद्ध प्रहार है, इनमें कटु जीवन का व्यंग है, साथ ही साथ प्रकृति का किसानी चित्रण भी है और देश की जागृत शक्ति का उबाल है। 'जिन्दगी की भीड़' की इन कविताओं में 'जनता के मोर्चे' की प्रतिध्वनि है।" कवि के इस कथन में अक्षरशः सत्य है।

केदार छायावादी अथवा रीति कालीन काव्य धारा तथा समस्त प्राचीन कविता के प्रभाव से मुक्त हैं। जिस प्रकार प्रेमचन्द ने छायावादी शीशमहल को चकनाचूर कर अपने साहित्य में युग को साकार करने का प्रबल-सफल प्रयत्न किया था उसी प्रकार केदार ने काव्य के समस्त रीति नियमों तथा कल्पना की पच्चीकारी के पथ को मोड़कर अपनी रचनाओं में एक नये पथ का निर्माण किया है, जिसमें किसी प्रकार की भूल-भुलैयाँ नहीं है, झाड-झंखाड़ नहीं हैं। केदार की कविताओं में किसी प्रकार की पेचीदगी व टेढ़ापन नहीं है। उन्होंने समाज के शोषित दलित और उपेक्षित वर्ग के पात्रों को अपने काव्य का नायक बनाया है। साथ ही साथ उनकी अनुभूति इतनी पैनी, इतनी सूक्ष्म, व्यापक और इतनी सच्ची है कि उन्होंने साधारणतम विषयों पर सुन्दर काव्य की सृष्टि की है। केदार की कविताओं में जहां हम एक ओर चन्दू, चैतू, रनिया, डांगर, शहर के छोकरों और बुन्देलखंड के आदमियों के स्वर तथा चित्र पाते हैं, वहां दूसरी ओर गेहूँ और कोहरे के साथ ही गर्रानाला तथा गुम्मे की ईंट जैसे प्राणहीन, तत्वहीन, सौन्दर्यहीन पदार्थों पर रची गई कविताओं में जीवन और सत्य के दर्शन करते हैं। परम्परा से चली आई काव्य की धारणाओं और मान्यताओं को तोड़कर केदार ने शक्ति, विश्वास और साहस के साथ अपनी कविताओं में काव्येतर विषयों को चुनकर उनके माध्यम से क्रान्ति की यथार्थता को सबल बनाने के प्रयत्न किये हैं। उन्होंने रस हीन तत्वों में भी रस और सौन्दर्य के दर्शन किये हैं। केदार की प्रतीकात्मक तथा श्लेषात्मक शैली का यह चमत्कार है कि उन्होंने बड़ी चुभती हुई उपमाओं द्वारा प्रकृति तथा वाह्य जगत के सूक्ष्म चित्र उपस्थित कर अपने मन की बात और विद्रोही विचार जनता तक पहुंचाये हैं। उनका कवि सशक्त, सबल और प्रौढ़ है, और वह युग के साथ कदम से कदम मिला कर चलने का अभ्यासी है।

यही केदार का मुख्य स्वरुप है, जो हमें उनके संग्रह "युग की गंगा"

की प्रथम कविता में ही अपना दर्शन और परिचय दे देता है। आज का युग शोषित जनता की मुक्ति का युग है। पूर्वी यूरोप, रूस तथा चीन आदि देशों में मुक्ति के सपने पूरे भी हो चुके हैं। अब कवि अपने देश की बारी देखता है। तभी वह कहता है:

युग की गंगा
पाषाणों पर दौड़ेगी ही
लम्बी ऊँची
पथ को रोके
चट्टानों को तोड़ेगी ही

युग की गंगा
सब प्राचीन डुबायेगी ही
नयी बस्तियाँ
शान्ति-निकेतन
नव संसार बसायेगी ही

केदार का हृदय संवेदनशील है। वह देश के करोड़ों शोषित और दलित इन्सानों के दुख-दर्द और उत्पीड़न से आहत है। तभी उनके प्रति केदार के हृदय की गहन सहानुभूति क्रोधित काले नाग की भांति शोषकों को डस लेने के लिये फुफकार उठती है। एक ओर तो वे निम्नतम वर्ग की जनता को अपने छन्दों में बिठाकर उसके दुख-दर्द की दीन तस्वीर उतारते हैं और दूसरी ओर समस्त जनता का क्रांति के लिये आवाहन करते हैं। मजदूर, शहर के छोकरे, बुन्देलखन्ड के आदमी, चन्दू, चैतू, रनिया, दीन कुनबा, मछुआहा शीर्षक कविताओं में हम समाज के निम्न तथा शोषित वर्ग के जीवन की झांकी पाते हैं। "दीन कुनबा" शीर्षक कविता में कवि ने उत्पीड़ित जनों का मार्मिक व वास्तविक चित्र उपस्थित करते हुये उनकी मानसिक अवस्था का भी यथार्थ चित्रण किया है:—

दीन दुखी यह कुनबा
जाड़े की थर थर में कंपता
अपनी चौपारी में बैठा
ताप रहा है कौड़ा
लकड़ी कंडे सुलग रहे हैं
आग लगी है

थोड़ी थोड़ी लपट उठी है
धुआं बढ़ा है
बाहर नहीं निकल पाता है
सब को घेरे रह जाता है

ठीक यही दशा आज भारतीय पीड़ित जन समुदाय की है। यद्यपि विद्रोह और असन्तोष की आग जन-मन में प्रज्वलित हो उठी है, किन्तु अभी उसमें धुआं ही अधिक है जिसने उसे चारों ओर से घेर लिया है, घुटने लगा है, लपटों को मन्द कर दिया है। कुछ कुछ यही हालत शेष, विशेषतया मध्यम वर्ग, की भी है। केदार ने उसे इन शब्दों में व्यक्त किया है:—

अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है
संज्ञाहीन अर्थहीन
बेकार चिरे फटे टुकड़ों सा पड़ा है
देरी है
एक दिन, एक बार आग के छूने की

भारतीय जन-जीवन की एक दूसरी झांकी कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत की है—

ओस फूलों पर पड़ी है जिन्दगी पर धूल है
रक्त का प्यासा यहाँ प्रत्येक लोभी शूल है

अथवा—जिन्दगी थक कर यहाँ पर चूर है
हड्डियों का शेर हारा भूख से मजबूर है
हाथ-पावों में जहाजी लंगरों का भार है
सांस का दरियाव जम कर बर्फ है
गर्म छाती की धधकती आग
मोमी शीत सी निष्प्राण है

और इन्हीं जीवन विरोधी परिस्थितियों ने कवि को विद्रोही बनाया।

है। तभी वह ललकार उठता है—

ऐ दधीचो शक्ति का डंका बजाओ
शांति का ज्वालामुखी सूरज उगाओ
लाल सोने का सबेरा चमचमाओ
लेखनी के लोक में आलोक लाओ

अथवा—मार हथौड़ा
कर कर चोट
लोहू और पसीने से ही
बंधन और गुलामी तोड़
दुनियां की जित्ती ताकत हो
जल्दी सबसे नाता जोड़

अथवा—आंधी के झूले पर झूलो, आग बबूला बनकर फूलो
कुरबानी करने को झूमो, लाल सबेरे का मुह चूमो
ऐ इंसानों ओस न चाटो, अपने हाथों पर्वत काटो
पथ की नदियां बाहर लाओ, जीवन पीकर प्यास बुझाओ

केदार की वाणी में बड़ा बल है। वह लोहे के हथौड़े जैसे प्रहार करती है। देशी पूंजीवाद के, जो कि विदेशी साम्राज्यवाद का लघुभ्राता या चेला है, पूर्ण विनाश के लिये केदार देश की जनता से कहते हैं:—

पत्थर के सिर पर दे मारो अपना लोहा
वह पत्थर जो राह रोक कर पड़ा हुआ है
जो न टूटने के घंमड में अड़ा हुआ है
जो महान फैले पहाड़ की
अन्धकार से भरी गुफा का
एक बड़ा भारी टुकड़ा है

इसी प्रकार देश की भूमि व्यवस्था के सुधार के लिये तथा जमींदारी शोषण प्रथा के अन्त के लिये कवि कहता है:—

हम उन्हें धरती दिलाना चाहते हैं
जो यहाँ सोना उगाना चाहते हैं

क्योंकि कवि जानता है कि इस धरती का सच्चा मालिक कौन है। वह लिखता है:—

यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर
बरसात घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है
खून चाटती हुई वायु में

केदार हर प्रकार से समाज से शोषण का अन्त कर देना चाहते हैं। वह एक वर्ग हीन पूर्ण सुखी समाज की स्थापना अपनी आंखों के सामने देखना चाहते हैं। इसलिये हर दुःखी इन्सान की भांति उनके हृदय में भी उतावलापन है। तभी उन्होंने अपनी कलम को भी तलवार का रूप दे दिया है जो किसी प्रकार के बन्धनों मे नहीं है:—

काव्य में रति-राग की इति हो गई
लेखनी अब क्रांति की असि हो गइ

और केदार को इस क्रांति की पूर्णता तथा सफलता पर पूर्ण विश्वास है जिसे उन्होंने बार बार दोहराया है:—

यह जो दीवारें घेरे हैं, ढह जायेंगी
यह जो सीमायें रोके हैं, मिट जायेंगी
यह जो आत्मायें बन्दी हैं, खुल जायेंगी
धरती को उन्मुक्त दिशायें मुस्कायेंगी
यह जो अंकुर उग आये है, बढ़ जायेंगे

कवि का यही अडिग, अदम्य, अटूट विश्वास और प्रबल आशा ही उसे सदा आगे बढ़ाती रहती है और वह सदा ही क्रान्ति तथा जीवन के राग गाता हुआ जन जीवन को युग की गंगा के पवित्र प्रवाह के संग लिये आगे चलता चला जा रहा है।

केदार की काव्य प्रतिभा का एक सबसे बड़ा चमत्कार और वैभव यह है कि वे छंद रचना और उसके गठन तथा शब्दों की ध्वनियों को मिला कर छोटे-छोटे ऐसे चित्र उपस्थित कर देते हैं जो अत्यन्त सजीव होते है, मार्मिक होते हैं, और जिनमें जीवन का यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। देखिये तूफ़ान का शब्द चित्र कवि ने किस कुशलता से उतारा है:—

मैं घोड़ों की दौड़ बनों के सिर पर तड़ तड़ दौड़ा।
पेड़ बड़े से बड़ा चिरौंटा सा चिल्लाया चौंका
पत्तों के पर फड़ फड़ फड़के
उलटे, उखड़े, टूटे
मौन अंधेरी की ढालों पर
सांड पठारी छूटे

इसी प्रकार सरकार द्वारा जारी किये जाने वाले आर्डीनेन्सों पर कवि का शब्द चित्र देखिये:—

कागजी घोड़े विदेशी
हिनहिनाते, टाप रखते
ध्वन्स करते गांव बस्ती
धूल धरती की उड़ाते
चाल मारू चल रहे हैं
बेतहाशा बढ़ रहे हैं

इसी प्रकार संघर्ष का दृश्य देखिये:—

तेज धार का कर्मठ पानी
चट्टानों के ऊपर चढ़ कर
मार रहा है घूँसे कस कर
तोड़ रहा है तट चट्टानी

बसन्ती हवा और गेहूँ के शब्द चित्र देखिये:—

चढ़ी पेड़ महुवा, थपाथप मचाया

गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा, किया कान में कू
उतर कर भगी मैं, हरे खेत पहुँची
वहाँ गेहुओं में, लहर खूब मारी

तथा—आर पार चौड़े खेतों में चारों ओर दिशायें घेरे
लाखों की अगणित संख्या में ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है
ताकत से मुट्ठी बांधे है नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज सा, मर मिटने को झूम रहा है

केदार का यही वह उज्ज्वल रूप है जो हम "युग की गंगा" और उनकी नयी अप्रकाशित कविताओं में देखते हैं। "युग की गंगा" से अपनी नयी रचनाओं में कवि ने काफी विकास और प्रगति की है। कवि के विद्रोही स्वरूप का उसकी नई रचनाओं में हम अधिक निखार पाते हैं। नौ सैनिकों का आल्हा कवि के विकास पथ का मील का एक पत्थर है। नई रचनाओं में कवि का रूप अधिक मँजा हुआ है और दृढ़ बन गया है। कांग्रेस शासन की स्थापना के बाद देश की वर्तमान दुर्दशा पर कवि ने लिखा है:—

देश की छाती दरकते देखता हूँ
थान खद्दर के लपेटे स्वार्थियों को
पेट पूजा की कमाई में जुटा मैं देखता हूँ
सत्य के जारज सुतों को
लंदनी गौरांग प्रभु की
लीक चलते देखता हूँ
डालरी साम्राज्यवादी मौत घर में
आँख मूँदे डाँस करते देखता हूँ

तभी कवि कहता है:—

जागरण है प्राण मेरा क्रान्ति मेरी जीवनी है
जागरण से क्रान्ति से मैं घनघना दूंगा दिशायें

केदार की कविताओं का यही मुख्य संदेश है

"नींद के बादल" केदार का दूसरा कविता संग्रह है जिसमें उनके प्रेम गीत संग्रहीत हैं। यद्यपि वह सभी गीत कवि के विकास क्रम की पहली मंजिल के गीत है किन्तु उनका प्रकाशन बाद में हुआ। कवि के वर्तमान् जीवन मे अब उन गीतों का कोई स्थान और महत्व नही हैं। अपना दूसरो मंजिल में पहुँच कर कवि का स्वरूप पूर्णतः बदल चुका था और "युग की गंगा" उसका प्रमाण है। "नीद के बादल" की कविताओं के सम्बन्ध मे केदार ने स्वयं लिखा है : "नीद के बादल रात के जादू के बाद दिन के लाल सबेरे के साथ ही ओझल हो जाते है। इस प्रकार मेरे इस नये सबेरे के साथ प्रेम की इस संग्रह की कविताओं की इति हो जाती हे। 'नींद के बादल' की कवितायें वैयक्तिक हैं; फिर भी मेरे कवि विकास की पहली मंजिल के स्पष्ट चिन्ह हैं जो अभी तक कागज के कलेजे पर ज्यों के त्यों जमे हुये हैं।"

"नींद के बादल" की कविताओं के सम्बन्ध में शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि, "उनमें एक नौवजवान की रंगीन भावनाओं की सादगी मौजूद है। उसका व्यक्तित्व बेहद ईमानदार है—अपने प्रति, अपनी कला और अपने पाठक के प्रति।" शमशेर बहादुर सिंह का यह कथन सर्वथा उचित है। इन प्रेम गीतों मे केदार के जीवन की एक अवस्था की झांकी है जिसे उन्होंने बड़ी यथार्थता और सचाई के साथ वैसा ही प्रकट कर दिया है। किन्तु वह अस्थायी थी। अब कवि के जीवन से पार हो चुकी है। इसलिये केदार के वर्तमान स्वरूप से इन कविताओं का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका सम्बन्ध केवल कवि के इतिहास से है। उस समय कवि अपनी प्रिया से प्रेरणा लेकर काव्य रचना करता था और कहता था :

कविता यों ही बन जाती है बिना बनाये
क्योंकि हृदय में तड़प रही है याद तुम्हारी (नीद के बादल)

तब वह प्रेम, सौंदर्य, अभिसार, मिलन और विरह की विभिन्न अवस्थाओं और मनोदशाओं का चित्रण किया करता था। किन्तु अब

कवि का स्वरूप पूर्णतः भिन्न है और अब उस की कविताओं की परिभाषा तथा सारी मान्यतायें ही बदल चुकी है। कवि ने स्वयं लिखा है कि—

लेकिन प्यारे नींद के बादल
लाल सबेरा होते होते
सब होने लगते है ओझल (नींद के बादल)

केदार की भाषा-शैली बड़ी सरल और सुबोध है। वे मुक्त छंद के अंदाज में कविता लिखना अधिक पसंद करते हैं और उनकी अधिकतर रचनायें उसी प्रकार की हैं। उनकी भाषा तो साधारण दैनिक बोल चाल जैसी ही भाषा है। वे संस्कृत के बोझीले और बनावटी शब्दों का प्रयोग बिलकुल नही करते हैं। संस्कृत के प्रचलित शब्द ही उनकी भाषा में पाये जाते हैं। दूसरी ओर उन्होंने अंग्रेजी भाषा के तमाम शब्द जो आम व्यवहार मे तथा बोलचाल में आ गये हैं, इस्तेमाल किये हैं, उदाहरण के लिये—टाइम, ट्रेन, डान्स, मेल, लाकेट, आदि। केदार की भाषा की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्होंने बुन्देलखन्ड तथा बांदा के आसपास के ग्रामीण इलाकों की, जहां उनका सारा जीवन बीता है, साधारण बोलचाल की भाषा के तमाम भावपूर्ण, मधुर और सुन्दर शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। उदाहरण के लिये—पोखर, साइत, कुसाइत, मुरैठा, डाँगर, पसीना चुचुआत है, औगी, दरकी गोरसी, अर्रातीं, कुनबा, चौपारी, कौड़ा आदि।

केदार कवि सम्मेलनों को आवश्यक मानते हैं क्योंकि "उन से साहित्य को अभिरुचि बनती है और जनता में साहित्य की पैठ होती है। गरीब अपढ़ जनता भी लाभ उठा लेती है।" वे चाहते हैं कवि सम्मेलन ठीक तरह से संचालित हों। वे स्वयं कवि सम्मेलनों में बहुत कम गये हैं, किन्तु जब कोई पूछता है तब संकोच नहीं करते हैं। उनकी महत्वाकांक्षा है कि "वे उत्तम से उत्तम जनवादी कवितायें लिखें।"

केदार न केवल आज बल्कि आगामी कल के भी कवि हैं।

२

शील
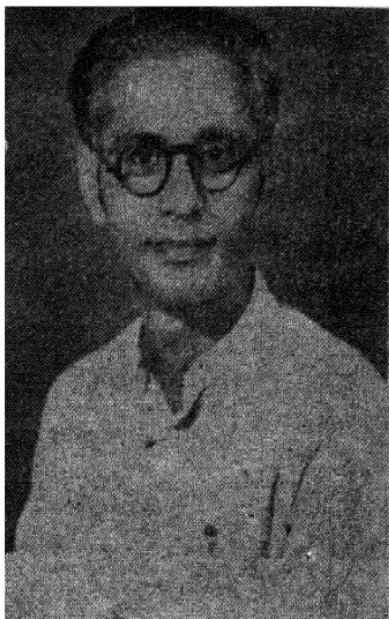
"आज के यथार्थवादी और तीव्र जीवन संघर्षों में साहित्य केवल मानसिक या काल्पनिक संघर्ष ही नहीं रह गया है, बल्कि जीवन की रचना करने और शूली की सेज पर मुस्कराने वालों का रचनात्मक संघर्ष बन गया है।"

श्री शील,
द्वारा—'नयापथ' कार्यालय
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड,
बम्बई, ४

★

अपनी रचनाओं में क्रांति और विद्रोह को स्वर प्रदान करने वाले और साथ ही अपने जीवन में उसे व्योहार में लाने वाले हिन्दी के विख्यात प्रगतिशील कवि श्री शील उन साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने अपनी जिन्दगी और लेखनी, दोनों ही शोषित-पीड़ित जन-जन की मुक्ति और सुखी-सुनहरे भविष्य के निर्माण के लिये समर्पित कर दी है। उन्होंने संघर्षों के आगे अपने सीने को रोप कर छन्दों की रचना की है। शील नये युग और नयी कविता के कुशल गायक और निर्माता हैं।

शील, जिनका वास्तविक नाम मन्नूलाल शर्मा है, का जन्म सम्वत् १९७२ में भाद्रपद की बहुला चौथ, रविवार के दिन गोधूल बेला में हुआ था। वे आग पर तपे हुये खरे सोने की भांति अपने जीवन के ३७ वर्ष पार कर चुके हैं। उनका जन्म स्थान उत्तर प्रदेश के विख्यात औद्योगिक केन्द्र कानपुर जिले में स्थित पाली नामक गांव है जहां उनके पिता स्व० पं० शिवनन्दन प्रसाद त्रिपाठी अपने पैतृक व्यवसाय के अनुसार पंडिताई और पुरोहिती करने के अतिरिक्त खेती भी किया करते थे। कान्यकुब्ज ब्राम्हण परिवारों में प्राचीन काल से ही पूजा पाठ तथा पुरोहिती करना मुख्य पेशा रहा है। शील के पूर्वजों का भी मुख्य कार्य यही था। किन्तु बाद में खेती बारी करना भी उनके परिवार का एक व्यवसाय बन गया। शील के पिता एक मेहनती किसान थे।

किसान का बेटा होना शील के लिये वरदान और अभिशाप दोनों ही सिद्ध हुआ। वरदान इस अर्थ में कि घोर अभावपूर्ण जीवन की विषमता तथा यातनाओं को झेलकर वे क्रान्तिकारी बने और अभिशाप इस अर्थ मे कि लाखों अभागे किसान बेटों की भांति वे जीवन विकास के वांछनीय साधनों से वंचित रहे। शील के पिता का शायद यही अनुमान था कि पुरखों की भांति उनका बेटा भी आगे चलकर पंडिताई करेगा, इसीलिये उन्होंने आरम्भ से ही उन्हें संस्कृत पढ़ाना शुरू किया। संस्कृत के पाठ रटने के लिये शील को अपने गुरु और पिता के जिन डंडों और लात-घूसों को सहना पड़ता था वे उन्हें आज तक याद हैं। शील ने उच्च शिक्षा के नाम पर कभी किसी पाठशाला में कदम नहीं रखा, यहां तक कि वे कभी मिडिल पास की उपाधि भी न ग्रहण कर सके। उन्हें संस्कृत के अतिरिक्त केवल हिन्दी का ही ज्ञान करा दिया गया था। किन्तु शील ने न तो पंडिताई ही की और न शोषण के जुये को अपने कन्धों पर रखकर उन्होंने अपनी ज़िन्दगी को खेत और घर की सीमाओं में बन्दी बनाकर रखा। वे तो जन्म से ही एक कवि और क्रान्तिकारी के रूप मे पैदा हुए थे।

गांव के धूल भरे वातावरण में शील का बचपन बीता। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते उन की समझ और नजर फैलती जाती। उत्तप्त दोपहरी मे शरीर के रक्त को पसीना बना कर खेत में अपने प्राण खपाते हुए पीड़ित किसान और उसके मरियल बैलों को देखकर तथा दूसरी ओर जमीदारों की हवेली में होने वाले रासरंग को देखकर और साथ ही जमीदार के लठैतों और कारिन्दों को लगान वसूली के नाम पर निर्धन असहाय किसानों के घर का सारा सामान कुड़क करते और उसे मुर्गा बना कर पीठ पर मनों का बोझ लाद कर हंटर मारते देखकर या कभी गांव बाहर किसी झुरमुट में किसी ग्रामीण बाला की जमीदार के छोटे बेटे द्वारा सतीत्व हरण करते समय चीत्कार सुनकर, शील का कोमल हृदय प्रतिहिंसा और विद्रोह की भावना से जल उठता। आगे जैसे-जैसे उन्हें

जीवन संघर्षों में पड़कर कष्टों और यातनाओं को झेलना पड़ा वैसे ही वैसे उनके हृदय का यह असन्तोष तीव्रतर होता गया।

शील बचपन से ही विद्रोही और उग्र विचारों के व्यक्ति थे। उनके जीवन का अब तक का इतिहास एक क्रांतिकारी के कठोर संघर्षों का रोमांचकारी इतिहास है। जो व्यक्ति तेरह वर्ष की आयु में ही देश-सेवा का व्रत लेकर घर से निकल पड़ा हो और गांधीबाबा की पुकार पर धरना देकर और सत्याग्रह करके जेल चला गया हो, उसके क्रांतिकारी स्वरूप का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। देश को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए शील आतंकवादी भी बने। आतंकवादी कार्यों के सिलसिले में पुलिस के साथ उनका लुका-छिपी का खेल वर्षों तक चलता रहा। पुलिस की पकड़ से बचने के लिए उन्हें एक बार एक दुमंजिले मकान की छत से कूदना पड़ा था जिसकी वजह से उनका बायां पैर, जिसकी हड्डी टूट गई थी, आज भी लँगड़ाता है। फिर भी पुलिस उन्हें पा न सकी। वे फ़रार घोषित किए गए। उसी हालत में इधर-उधर भटकते हुए वे जयपुर पहुँचे। वहां एक पाठशाला में संस्कृत अध्यापक हो गए। यहीं पर उनका नाम "शील" पड़ गया। इसी नाम से वे जयपुर से अपनी कवितायें इधर-उधर प्रकाशनार्थ भेजते रहते।

जयपुर से लौटकर शील कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता बन गये। उन का कार्य क्षेत्र बांदा (उत्तर प्रदेश) था। कई वर्षों तक वे बांदा कांग्रेस कमेटी के मंत्री रहे। बांदा से वे कानपुर चले आए और वहां कार्य शुरू किया। वे कई बार जेल गए। कांग्रेस के कार्यकर्ता के रूप में वे अन्तिम बार सन् १९४१ में गांधी जी के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में जेल गए। इन्हीं दिनों कांग्रेस के भीतर उनका उग्रवामपक्षी विचार धारा के व्यक्तियों तथा नेताओं से निकट सम्पर्क और सहानुभूति बढ़ गई। साथ ही कानपुर में रह कर कानपुर के मजदूर जीवन का निकट से प्रत्यक्ष अध्ययन करने का भी इन्हें अवसर मिला। वे तो स्वभावतः क्रांतिकारी थे ही। फलतः शील कम्यूनिस्ट बन गए।

कम्यूनिस्ट बनते ही शील का जेल जाने का ताँता बढ़ गया। पिछले छः वर्षों में शील चार बार जेल में ठूँसे गये। और यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज साम्राज्यवादी शासकों ने उन्हें जेल में ठूँस कर उनकी पत्नी तथा एक मात्र लाड़ली सन्तान पुत्री को सदा के लिये उनसे अलग कर दिया और शील अपनी पत्नी तथा पुत्री के अन्तिम बार दर्शन भी न कर सके। और बाद में कांग्रेसी पूंजीवादी शासकों ने उन्हें पुनः जेल में ठूँस कर उनके पिता को भी सदा के लिये उनसे छीन लिया और बीमार पिता के अन्तिम दर्शन के लिये उन्हें पैरोल पर भी नहीं छोड़ा। किन्तु चाहे अंग्रेज शासक हों या कांग्रेसी शासक, उनकी पुलिस, लाठी, जेल उन्हें कभी पीछे नहीं हटा सके, उनके साहस और लगन को न तोड़ सके। शील ने कभी तो कानपुर की सड़क पर मजदूरों के जलूस का नेतृत्व करके लाठियों की बौछार सही और सिर फुड़वाया, और कभी कलकत्ते में जनता से खचाखच भरे हुये भवन में पुलिस की संगीनों के साये में क्रांति की ललकार लगाई और कभी शिवगढ़ के किसान सत्याग्रहियों की सभा में पुलिस की बन्दूकों और लाठियों के घेरे में रह कर सरकार का तख्ता उलटने का आवाहन किया, और कभी अपने गांव पाली में जालिम जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ ग्रामीणों को संगठित करने में लठैतों और गुंडों की मार सही। कई बार शील की हत्या कराने के भी दुष्प्रयत्न किये गये।

राजनीतिक आन्दोलनों की यातनाओं के अतिरिक्त शील को अपने जीवन में अब तक घोर आर्थिक यातनायें और संघर्ष भी झेलने पड़े हैं। इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, कलकत्ता, जबलपुर, बम्बई, न मालूम कहाँ-कहाँ शील भटके और पेट के लिये न मालूम क्या-क्या किया। कभी प्रेस में नौकरी की, कभी कोयले की दूकान खोली, कभी रिक्शा चलवाया, और कभी किसी नुमायश में चाय—बिस्कुट की दुकान खोली। और आज उनके जीवन की आर्थिक समस्या ही उन्हें घसीट कर बम्बई ले गई है जहाँ केवल कुछ रुपयों के लिए उन्हें कुछ फिल्मों में अपनी शक्ल

भी बेचनी पड़ी है।

शील ने सदैव एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य को एक प्रबल अस्त्र मान कर उसकी रचना की हैं। उन्होंने बहुत कम उम्र से कविता लिखना शुरू किया था जब उन्हें स्वयं यह ज्ञान न था कि वास्तव में कवि और कविता क्या वस्तु है। उनकी प्रथम कविता का रचना काल सन् १९३० है और सबसे पहली बार सनेही जी के 'सुकवि' (कानपुर) ने सन् १९३४,३५ में शील की कविता प्रकाशित की थी।

बचपन में ही कविता लिखना शुरू करने के बाद शील के तरुण कवि ने एक बार प्रबल अंगड़ाई ली और फिर वह प्रशस्त बन कर प्रगति पथ पर एक पग आगे बढ़ा और आज वह उदय पथ का राही है। अब तक शील के तीन प्रमुख कविता संग्रह हमारे सामने आ चुके हैं : "अंगड़ाई" सन् १९४४ में, "एक पग" सन् १९४६ में और "उदय पथ" सन् १९५३ मे। इनके पूर्व शील की सर्व प्रथम कविता पुस्तक "चर्खाशाला" के नाम से प्रकाशित हुई थी जब कि वे बांदा में कांग्रेस कार्यकर्ता थे। इन पुस्तकों के अतिरिक्त शील की कहानियों और स्केचों का एक संग्रह "अर्थ पिशाच" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। शील के अप्रकाशित ग्रन्थों मे "जीवन पर्व" एक विस्तृत कविता, "नवमी" और "नये निशान" दो उपन्यास, "तीन दिन" एक नाटक और दो अन्य कविता सग्रह भी हैं। उनका "तीन दिन" नाटक पृथ्वी थिएटर (बम्बई) अभिनय के लिये खरीद चुका है। शील ने अपने साहित्यिक निबन्धों और लेखों का भी एक संग्रह तैयार किया है।

शील की विचारधारा और दृष्टिकोण ठोस मार्क्सवादी है। उन्होंने लिखा है कि—"मैं कम्यूनिज्म को भावी संसार का भविष्य मानता हूँ। इसी लिये शोषण विहीन जीवन की रचना के लिये संघर्षों में लीन हूँ। कम्यूनिज्म मानव जीवन के विकास की वह व्यवस्था है जिसमें श्रम और समाज के प्रगति की प्रणाली नित नये रूपों में विकसित होती रहेगी।"

यही वह पुष्ट विचारधारा है जिसने शील के व्यक्तित्व और कृतित्व

दोनों का निर्माण किया है। साहित्य तथा काव्य के प्रति भी शील के विचार भौतिकवादी तथा मार्क्सवादी है। उन्होंने लिखा है : "साहित्य को मैं प्रचार मानता हूँ। सभी साहित्य किसी न किसी विचारधारा का प्रतिपादन करता है। सत्य और कल्पना के सामन्जस्य से जो साहित्य रचा जाता है वही प्रगतिशील और कल्याणकारी होता है। साहित्य एक अजेय शक्ति है।" कविता का कर्तव्य और मान शील ने यह निर्धारित किया है कि, "वह आदमी को चक्र प्रवर्तन के लिये उन्मुक्त कर दे और उसे जागरूक बना र निर्दिष्ट दिशा की ओर बढ़ने की प्रेरणा दे।"

शील की यह विचारधारा उत्तरोत्तर विकसित हुई है। उनके तीनों कविता संग्रहों मे वह दृढ़, दृढ़तर और दृढ़तम बनती गई हैं। शील ने अपने प्रथम कविता संग्रह "अंगड़ाई" मे 'अपनी बात' में एक लम्बा वक्तव्य देते हुए कहा था : "कवि समाज का प्राणी है, अंग है। उसकी वाणी राजनैतिक शक्ति का उद्बोधन है। सामाजिक विषमता और उससे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण तथा हल कवि का जीवन है। कवि जनमत तैयार करता है, विचार देता है, शक्ति देता है, कर्म पथ की ओर चलने के लिये समाज को प्रेरित करता है, पथ प्रशस्थ बनाता है। ..कवि की कला व्यक्तिगत राग-द्वेषों की अनुभूति की ही अभिव्यक्ति है, जो जीवन की उपादेयता को कलात्मक स्वरूप दे कलाकार को जीवन की अभिव्यंजना करने के लिये वाध्य कर देती है। जीवन विहीन कला का कोई अस्तित्व नहीं।...समाज का कल्याण ही कला की अमरता है।" और अब "उदय पथ" में शील ने लिखा है कि—"आज के यथार्थवादी और तीव्र जीवन संघर्षों में साहित्य केवल मानसिक या काल्पनिक संघर्ष ही नहीं रह गया है, बल्कि जीवन की रचना करने और शूली की सेज पर मुस्कराने वालों का रचनात्मक संघर्ष बन गया है।" तभी शील उन बहके हुये प्रगतिवादी साहित्यकारों की भर्त्सना करते हैं जो केवल अध्ययन के बल पर, समाज की तह तक बिना घुसे प्रगतिशील साहित्य की रचना करते हैं। शील का कहना है कि—"रोटी और प्रेम के राग बिना साक्षात

के नहीं गाये जाते।" (अंगड़ाई पृष्ठ ८) शील ने चूंकि स्वयं किसान और मजदूरों के जीवन में घुस कर उस का नग्न स्वरूप देखा है और उन्होंने खुद अपनी पीठ पर संघर्षों तथा आफतों को झेला है, इसीलिए हमें उनके साहित्य में एक स्वस्थ, प्रौढ़ और सुलझे हुए प्रगति शील कवि का स्वरूप देखने को मिलता है।

शील निराला को हिन्दी का सबसे अच्छा कवि मानते है, क्यों कि—"निराला ने अपने काव्य में उन टिपिकल पात्रों की रचना की है जो सामाजिक जीवन को अनुप्राणित करते हैं और विद्रोह को आग धधकाते हैं।"

शील जनवादी और एक अटूट विश्वासी कवि है। उनके कवि विकास की तीन स्पष्ट मंजिलें दिखाई देती हैं। पहली वह जिसमें वे एक किसान की भांति अपने खेत, हल, बैल और गांव की महिमा तथा अपने प्यार को गाते थे। तब कवि के हृदय में उग्र राष्ट्रीयता का पनपना शुरू हुआ था। अपनी दूसरी मंजिल में पहुँच कर कवि ने समाज के शोषित-पीड़ित समुदाय के दुख-दैन्य को देखा तथा उनके प्रति अपनी सहानुभूति और समाज के वैषम्य को चित्रित करना शुरू किया। और इसी समय कवि के विकास की तीसरी मंजिल आ पहुँची, जब वह वैषम्य को मिटाने के लिये कटिबद्ध हो गया, क्रांति की ललकार लगाने लगा, सर्वहारा को संगठन और जागृति का संदेश देने लगा। शील का कवि घोर संवेदन-शील है। उस की अनुभूति सदैव परान्तः की ओर रही है। वह कभी कभी अहम् के घेरे में बन्द नहीं रहा। उसने सदा समाज को ही देखा है, और उसी का चित्र उतारा है। हां, दृष्टिकोण उसका अपना है, विचार उसके अपने हैं।

शील की दृष्टि का विस्तार बड़ा व्यापक है। वह समाज के निम्न-तम स्तर तक पहुँचती है और ऊंचे स्तर को गिराने की बात करती है। शुरू शुरू में शील खेत में हल चलाते हुए एक किसान की भांति बैल हांकते हुए गा उठे थे : "तक-तक, तक-तक बैल"

तब वे चित्र उतारते थे : पां फटी मुग भी बोल उठे, हलबैल लिए जाते किसान। फिर वे "दीन हीन किसान हैं हम" कह कर किसान की महिमा गा उठते थे :—

हे विश्व प्राणदाता किसान, हे श्रेष्ठ लोक त्राता किसान
तुम सरल हृदय, तुम शांति मूर्ति, तुम निरत श्रमी, तुम तपःपूत
तुम शस्य सृष्टि के निर्माता, व्यापार जगत के बल अकूत
मानव समाज के स्वाभिमान

और फिर कभी वे गांव की झोपड़ी में चक्की पीसती हुई दुखिया नारी का, या भूख मिटाने के लिए साला बीनने पर चोरी के अपराध में पकड़े गए एक निर्धन कंगाल का, या जमींदार की लड़की को झूलते देख रघुआ की मचलती हुई रधिया का, या घास काटते हुए किसी घसियारे का, या जमींदार के खेत में बेगार में पांस डालती हुई अर्ध-नग्न ग्रामीण षोडशी का, या खेत की मेड़ पर गाते हुए किसी किसान के किशोर का, या खेत में काम करते हुए किसान के लिये सर पर छोटी गठरी में पनेथी-साग लेकर आती हुई किसान की स्त्री का चित्र उतारते। शील की इस प्रकार की सभी कवितायें इतनी मार्मिक और यथार्थवादी है कि वे हमारी कल्पना-शक्ति को सहज में ही पकड़ कर हमें भी क्षण भर के लिये उसी हर्ष-विषादपूर्ण वातावरण में पहुँचा देती है। शील की कविताओं में जिन्दगी छलछलाती है, उनसे एक वातावरण बनता है। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे अपनी रचनाओं द्वारा पाठक या श्रोता के हृदय में स्वतः एक असंतोष और विद्रोह की भावना उभार देते हैं और हमारा मन जमींदारों तथा शोषकों के विरुद्ध गहरी घृणा से भर जाता है।

शील ने सदैव ही धरती, मानव और जिन्दगी के राग गाये है। उन्हें अपने देश से, देश की भूमि और करोड़ों नर नारियों से गहरा प्यार है और वे यहां एक नया संसार बसाने के लिए भी कटिबद्ध हैं। तभी तो उन्होंने "आदमी के गीत" में लिखा है :

देश हमारा, धरती अपनी, हम धरती के लाल
नया संसार बसायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे (उदयपथ)

शील ने जिन्दगी की परिभाषा संघर्ष के रूप में ही की है। जुझारु व्यक्ति ही उनके लिये उपास्य है। संघर्षहीन जिन्दगी का उनके लिए कोई महत्व नहीं है। देखिये जिन्दगी की परिभाषा उन्होंने कितने महान स्वरों में की है :-

युग के भीषण गतिरोधों में फूट पड़ी निर्झर सी झर झर
श्रम को सोना रही बनाती दहते अंगारों में तप कर
फौज, खान, मिल, कालेजों में सुन्दरतर भविष्य सी उज्ज्वल
कवि के गीतों में जनता के जागे हुये मनोरथ का बल
पानी सी प्रिय, स्वच्छ आग सी, निर्मल क्रान्ति पर्व सी पावन
हंसती हुई कृषक बाला सी, उगते खेतों सी मनभावन
खिलती हुई कली सी पुलकित, उड़ते हुए भ्रमर सी चंचल
नयी दृष्टि के पृष्ठ खोल कर लाई नई जिन्दगी हलचल
(उदयपथ)

शील ने जिन्दगी के तमाम रूप देखे हैं। समाज और प्रकृति की प्रत्येक मुस्कराती हुई, आगे बढ़ती हुई वस्तु में उन्होंने प्राणों के दर्शन किये हैं। तभी उन्होंने जिन्दगी के यह सफल चित्र उतारे हैं।

शील रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों में एक क्षण के लिये भी बँधे नहीं रह सके। धर्म को उन्होंने सदैव शोषण का अस्त्र माना। उन्हें प्राचीनता से किसी प्रकार का मोह नहीं है। वे नवीनता के पुजारी हैं। उन्होंने सत्य के दर्शन मानव के जीवन मे ही किये हैं और साफ लिखा है :-

पूजा-अर्चन और पुजापा दोजख में तुझको ले जाता
मन्दिर-मस्जिद की छाया ले पूंजीवादी काल चबाता
अथवा—कहा वेद ने धर्मभ्रष्ट है, श्रुति ने खोज दिखाई
इन दोनों से दूर दूर जा, मैंने निज निधि पाई

मंदिर भूला, मस्जिद भूली, भूली मदिर पिपासा
किन्तु न भूली मुझे जगत की मरघट सी अभिलाषा
अरे बावले सत्य कहां है कानों में टकराया
नर के रक्त मांस पर नर ने अपना महल बनाया

(अंगड़ाई)

अथवा-मजहब धर्म समेट न पाये लिखे जिन्दगी भर स्वर्णाक्षर
सदा व्याज बन रहे कसकते योगी, यती, पीर, पैगम्बर

(उदयपथ)

तभी शील ने उन लोगों की कठोर भर्त्सना की है जो धर्म के आडम्बरों में बँधे हैं और कहा है :—

तुम कहते होकरूं कल्पना, पूजूं मानव से पत्थर
तुम कहते हो करूं साधना होते साधक के ईश्वर
पर हम हैं इन्सान हमारी दुनियां दूध-पूत वाली
रक्त-स्वेद के दिये जलाकर मना चुके हम दीवाली
हम धरती के पूत, हमारी धरती स्वर्गों की सृष्टा
हम अनादि, हम सगुण तत्वमसि, हम नवजीवन के द्रष्टा

इसीलिए शील को भाग्य पर भरोसा नहीं है, बल्कि बाहुओं की शक्ति पर है। वे भाग्यवादी नहीं हैं, क्योंकि संघर्ष और क्रांति का भाग्य दुश्मन है। उन्होंने लिखा है :

जल रहा रक्त की ज्वाला में कंकाल विषमता का विषाद
संघर्ष क्रांति की धरती से कर चुका पलायन भाग्यवाद
रख चुकी अशोषित मानवता नूतन भविष्य की ओर चरण
जनरव के चित्र उतार रहा कवि कुल की वाणी का निनाद

(उदयपथ)

शील चारों ओर प्रगति के दर्शन करते हैं। वे देख रहे हैं कि आज का सर्वहारा मानव सबल-संगठित होकर उठ खड़ा हुआ है। देश जाग रहे हैं। जातियां उठ रहीं हैं। सभी मुक्ति पथ पर बढ़ रहे हैं। यह प्रगति

का युग है, बन्धनों से छुटकारा पाकर नया निर्माण करने का युग है। तभी शील ने लिखा है :—

उठ रहा मनुष्य क्रांति जन्म ले रही
अंधकार है सिमट सिमट सिसक रहा
जाग रहे देश जातियां उभर रहीं
लोकतंत्र है विकल विकास के लिए

अथवा-शृंखला-नियंत्रण तोड़ चुके, हम छोड़ चुके जर्जर पद्धति
हम प्रगतिशील, हम परिवर्तक, है कौन रोक सकता द्रुतगति
भौतिक तथ्यों को समझ सजग हो उठी सर्वहारा समष्टि
हम ध्वस्त रूढ़ि कर चुके, चले रचने अनियंत्रित नई सृष्टि
(अंगड़ाई)

अथवा-कल का स्वप्न आज सम्मुख है करने को युग की अगवानी
उठा एशिया, योरप जागा, सजग हुआ हर हिन्दुस्तानी
देश-देश में जन्म ले चुकी नई जिन्दगी, नई जवानी
(उदयपथ)

कवि के जीवन से अब वह अवस्था पार हो चुकी है जब वह केवल वैषम्य को ही चित्रित करके हर एक से यह कहा करता था कि:—

सदियों की सोई चिनगारी चलो आज हम तुम धधकादें
अन्तर्द्वन्द्वों की भट्टी से जग में भीषण आग लगा दें

अथवा-पहिन अनल लपटों की माला महा मृत्यु का साज सजाओ
मेरे कुंठित भीषण स्वर में तुम भी आज भैरवी गाओ

अथवा-शोषित से बलिदान कह रहे अपना भार संभालो
क्रूर विषमता अब न रहेगी लाल ध्वजा फहरा लो
(अंगड़ाई)

किन्तु अब कवि स्वयं देख रहा है कि उसकी यह सारी कामनायें पूरी हो चलीं हैं। आज शोषित जनता चल पड़ी है। इस लिये अब तो उसके साथ-साथ चलना है, उसे संगठन और बल देना है, समाज के

नवनिर्माण में हाथ बटाना है। अब केवल ललकार लगाने का समय नहीं है। अब तो करने का समय आ गया है। प्रगति और विकास की यह दूसरी मंजिल है, क्योंकि शील कहते हैं:—

हो रही सजग चेतना शक्ति, खो रहा गगन में अंधकार
चल रहा उर्ध्वगामी मानव करता निर्माणों का प्रसार
(एक पग)

शील तो वह पथिक हैं जिन से "राह हारी मैं न हारा" (एक पग) तभी उन्हें किसी प्रकार के समझौते और समर्पण पर विश्वास नहीं है। देश की राष्ट्रीय नेता मंडली जब आजादी के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौते की बात करती थी, तब शील खीज कर कह उठते थे:—

सीपियों की सम्पदा को सिन्धु कब पहचान पाया
ठोकरें खाते हुए को कब हिमालय ने उठाया
निर्झरों में ज्वार कब, कब कूप में आया बवंडर
आश चातक की लगी है प्यास है मरु की बुझानी
ऊसरों को खोद कर ही है धरा उर्वर बनानी (एक पग)

और जब देश मे पस्तहिम्मती तथा निराशा का वातावरण छा गया, तब शील अपने कवि से कह उठे:—

मेरे दीपक जलते रहना जब तक रात रहे
जब तक सूरज नयन न खोले,
खिल कर कमल न मुख से बोले
तब तक मेरे उर के दीपक चौमुख ज्योति बहे (एक पग)

क्योंकि तब भी शील को खँडहर से झाँकता हुआ सबेरा दिखाई देता था—

खंडहर से खड़ा सबेरा चुपके से ताक रहा है
महलों की कुत्सित काया मन ही मन आंक रहा है

तभी शील को बल मिलता, आशा बंधती और वे गा उठते:—

है सही ध्रुव ध्येय मेरा, लक्ष्य पर मैं जा रहा हूँ

रात्रि का भय है न मुझको, मैं प्रभाती गा रहा हूँ
आ रही ऊषा तिमिर के बन्धनों की तोड़ कारा
पर्वतों पर नृत्य करती खोल किरणों का पिटारा (एक पग)

इसी लिये शील अपने गीतों में क्रांति का आवाहन करते और कहते:—

गीतों की धरती पर नाचो उन्चास पवन बरसो सावन
इतिहास समय की छाती पर लिख रहा सुघर पुलकित अक्षर
कर रहा आदमी साफ दासता से दुनिया की नई डगर
(उदयपथ)

फिर वे अन्य कवियों और लेखकों से भी कहते कि—

साथियों होश में हो
वक्त आराम का नहीं
कलम की नोक से अवाम के फफोलों को कुरेदो
लहू को गर्म करो (उदय पथ)

क्योंकि यद्यपि देश को अंग्रेजी शासन से छुटकारा मिल गया है, फिर भी जनता आजाद नहीं है। आजादी के बाद देश की जो हालत हुई है उसने शील के विद्रोही कवि को और भी अधिक उकसाया है, और तब वे यह लिखने के लिए विवश हुये हैं कि:—

पर यह प्यारा देश हमारा लूट घूस शोषण का मारा
खून चूसने वाली जोंकें अभी यहाँ करती पौबारा
शासन उनका, राशन उनका, कानूनों पर आसन उनका
गांव, गली, शहरों, नगरों को जकड़े हैं बटमार

अथवा—मुफ्तखोर महलों में हंसते हम जीनें के लिये तरसते
मिट्टी पानी बिके मगर हम मेहनत अपनी बेंच न सकते
ऐसा है यह राज तिरंगा अड़ियल गधे नहायें गंगा
शासन क्यों न बदल दें जिसमें रहे आदमी भूखा नंगा

अथवा—गोरे तन नीली पुतली में उतर गये काले तन वाले

और तभी शील पूर्ण विश्वास से कहते हैं कि:—

छल का राज न चल पायेगा, जल का दिया न जल पायगा

क्योंकि—लड़ रहा मजदूर बाजी हाथ है
चक्र की आवाज अपने साथ है

और तब शील अपने कवि से कहते हैं:—

तूफानों की तरह मचल कर चलना है तो चल
अंगारों की तरह दहक कर जलना है तो जल (उदय पथ)

क्योंकि—विश्व में पहली पहली बार
सभ्यता पशुता को संहार
कर रही नव संस्कृतियां एक
मनुज को सबल सुकृतियां एक
शांति के घुंघरू बोल रहे
गीत बढ़ घूंघट खोल रहे
किरण परियों की चली बरात
सत्य की साक्षी कवि की बात (उदय पथ)

यही शील के प्रशस्त कवि का मुख्य स्वरूप और परिचय है, जो आज शान्ति की रक्षा और शोषण-विषमता के पूर्ण विनाश में संलग्न है।

इतने सब होते हुए भी शील में अब एक दोष दृष्टिगत होने लगा है और वह यह कि उनकी भावाभिव्यंजना तथा भाषा में क्लिष्टता और जटिलता आने लगी है। "अंगड़ाई" में शील की भावाभिव्यक्ति और भाषा दोनों ही सरल, सादी और सीधी थी। "एक पग" में वह कुछ दुरुह बनने लगी। और अब "उदयपथ" में उसकी जटिलता काफी बढ़ गई है। कभी कभी वे अपने भाव पहेलियों की भाषा में व्यक्त करते हैं, उदाहरण के लिये—

दूध की झाग, दूब के बोल। गर्भ में बच्चे आंखें खोल

× × ×

विश्व की शोभा चीन नवीन, जल भरे बादल झरते मीन
अथवा—दुर्मद हाथी, ठगिनी चाल, लाई चालों में भूचाल
हाथी झूमा, सांकर घूमी, तुम सबकी निकली मर्दू मी

शील की इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति यद्यपि बड़ी पैनी और अर्थ पूर्ण है, किन्तु वह पढ़े-लिखे वर्ग की समझ के लिये है, सर्वसाधारण या अपढ़ जनता के लिए कठिन और जटिल है। इसी प्रकार उनकी भाषा मे भी संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। कभी कभी वे उर्दू-फारसी के भी भारी भरकम शब्द प्रयोग कर जाते हैं। उनकी भाषा में एक किसान और मजदूर की भाषा जैसी सरलता, सादगी और मधुरता नहीं है। उसमें साहित्यिक सौष्ठव की रक्षा का ध्यान अधिक प्रतीत होता है।

शील जनता के कवि है। मजदूर-किसानों के कवि हैं। उन्हीं से उन्हें प्रेरणा मिलती है और उन्हीं के लिए वे लिखते भी हैं। इस लिए उन्हें भाषा तथा भावाभिव्यक्ति के प्रति अधिक सजग रहने की आवश्यकता है।

———

३

हंसकुमार तिवारी
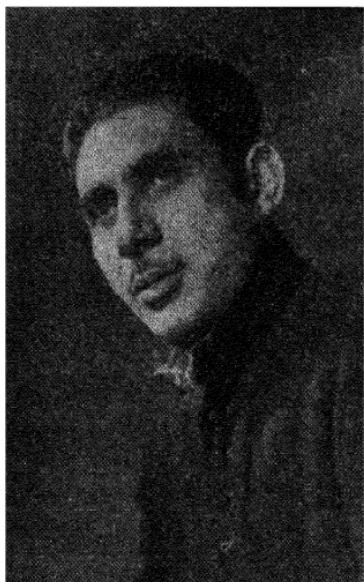
"जीवन और जगत की जो भी थोड़ी तत्व वस्तुयें मेरी आत्मा में सत्य और सुन्दर रूप में आ सकी हैं, मैंने उन्हें ही गूंथ कर गाया है। लेकिन अपनी जीवन भर की प्राप्ति का यथायथ रूप ही मेरे गीतों में नहीं है, जैसा कि फोटोग्राफर की तस्वीर में हुआ करता है।"

हंसकुमार तिवारी,
मानसरोवर,
गया (बिहार)

★

नयी पीढ़ी के प्रशस्त कवियों के समुदाय को बलवान बनाने में बिहार राज्य ने जो योग दिया है उसके एक प्रतिनिधि उदाहरण श्री हंस कुमार तिवारी हैं जिनकी साहित्यिक प्रतिभा की ख्याति प्रदेशीय सीमाओं को लांघ कर आज समस्त हिन्दी जगत में दूर दूर तक पहुँच चुकी है। बिहार के नयी पीढ़ी के साहित्यकारों में आप प्रमुख हैं। आप न केवल एक सफल कवि हैं वरन् प्रसिद्ध अलोचक ओर एक कुशल कहानीकार भी।

हंस कुमार तिवारी का जन्म ३५ वर्ष पूर्व अगस्त, १६१८ में बिहार राज्य के मानभूम जिले में पंचकोट राज्य नामक स्थान में एक कान्य-कुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप के पिता स्वर्गीय पंडित ज्योतीन्द्र नाथ तिवारी खेतीबारी करते थे। आप के पूर्वज उत्तर प्रदेश के निवासी थे। हंसकुमार तिवारी का परिवार काफी बड़ा है जो सब अब आपके ऊपर ही आश्रित है। आपका मुख्य व्यवसाय केवल लेखन है किन्तु साथ में प्रकाशन का काम भी आप करते हैं। गया में, जहां के आप निवासी हैं, एक प्रकाशन संस्था 'मानसरोवर प्रकाशन' के नाम से स्थापित है। आप बिहार राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री भी हैं।

हंसकुमार तिवारी ने सन् १६३५ में लगभग १६-१७ वर्ष की आयु से ही साहित्य रचना आरम्भ की थी। आप की रचना सबसे पहली बार पटना से प्रकाशित होने वाले पत्र "बालक" में प्रकाशित हुई थी। किन्तु आज कल तो आप की रचनायें नया समाज, कल्पना, अंवतिका, आजकल आलोचना आदि प्रतिष्ठित और प्रमुख पत्रों में अक्सर देखने को

मिला करती हैं। आज तक आप की लगभग एक दर्जन स्वरचित पुस्तकें तथा अनेक अनुवादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप की प्रकाशित पुस्तकों में तीन कविता संग्रह—"रिमझिम" (प्रकाशन तिथि सन् १९४१) "नवीना" और "अनागत" (प्रकाशन तिथि सन् १९४६) हैं। इसके अतिरिक्त एक संगीत रूपकों का संग्रह "पुनरावृत्ति," एक कहानी संग्रह "समानान्तर," एक बाल उपन्यास "बदला" तथा "कला-संचयन," "साहित्यिका" और "साहित्यायन" चार अलोचना साहित्य की पुस्तकें भी आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। कविताओं के अतिरिक्त आपने मुख्यतया समालोचनायें और कहानियां अधिक लिखी हैं।

हंसकुमार तिवारी अब तक अपने अस्तित्व को कायम रखना ही अपने जीवन की एक मात्र अघटनीय घटना मानते हैं। उन्हें भ्रमण और स्वाध्याय से विशेष अभिरुचि है। कवि सम्मेलनों को आप केवल इतना ही महत्व देते हैं कि "उन से कविता को लोगों तक पहुँचाने में थोड़ी सहायता मिली, बस। बाकी उनसे कविता का मान और स्तर घटता ही गया है।" इसलिये वे केवल कभी कभी ही कवि सम्मेलनों में भाग लेते हैं। आप अपने ऊपर "बहुत से" साहित्य का प्रभाव मानते हैं किन्तु किस साहित्य अथवा साहित्यकार का प्रभाव अधिक पड़ा है यह बता सकना आप के लिये कठिन प्रतीत होता है। आपकी अपनी कोई भी खास महत्वाकांक्षा नहीं है। आपकी आर्थिक आय का कोई सुनिश्चित या बँधा हुआ साधन नहीं है, जो कुछ है वह आकाशवृत्ति के समान है।

आपने अपनी कविताओं के सम्बन्ध में अपने "रिमझिम" कविता संग्रह की प्राथमिका में लिखा है कि : "जीवन और जगत की जो भी थोड़ी तत्व वस्तुयें मेरी आत्मा में सत्य और सुन्दर रूप में आ सकी हैं, मैंने उन्हें ही गूंथ कर गाया है। लेकिन अपनी जीवन भर की प्राप्ति का यथायथ रूप ही मेरे गीतों में नहीं है, जैसा कि फोटोग्राफर की तस्वीर में हुआ करता है।" कवि का यह कथन और स्वीकारोक्ति महत्वपूर्ण और विचारणीय हैं, क्योंकि इसी के द्वारा हमें कवि का वास्तविक

स्वरूप ज्ञात हो सकता है। हंसकुमार तिवारी का कहना है कि उन्होंने जीवन और जगत का जो भी ज्ञान प्राप्त किया है उसे ही कविताओं के रूप में प्रगट किया है। उन्होंने स्वयं उस ज्ञान को सत्य और सुन्दर के विशेषण प्रदान किये हैं जिस का स्वरूप हमें उनकी रचनाओं को पढ़ने पर ही देखने को मिल सकता है। किन्तु उनका वह सत्य और सुन्दर ज्ञान उनके दिमाग से नहीं बल्कि दिल से अर्थात् आत्मा से उपजा है और वह हर प्रकार के वादों के विवाद से दूर है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में लिखा है कि : "मैं दावे के साथ इतना निवेदन करता हूँ कि वर्तमान काव्य जगत के वादों के विवादमय वातावरण से वे दूर, बहुत दूर हैं। ये किसी खास श्रेणी के लिये नहीं लिखे गये हैं।" आगे चलकर उन्होंने यह भी लिखा है "कि जो दिल के बजाय सिर्फ दिमाग से सोचते है उनके लिये विज्ञान आदि विषय हैं।"

हंसकुमार तिवारी के इन विचारों से उनके पूर्व कथन, अर्थात् उन्होंने सत्य और सुन्दर को ही अपनी रचनाओं में चित्रित किया है की सच्चाई और वास्तविकता उभर कर सामने आ जाती है। वह सत्य और सुन्दर कैसा है, क्या है, जिसे उन्होंने दिमाग से नहीं बल्कि दिल से सोचा है ? और जो हर प्रकार के वादों के विवाद से दूर है ? उनके यह विचार और उनका यह दृष्टिकोण अभिजातवर्गीय और प्रतिक्रिया वादी लेखकों के विचारों से मिलता-जुलता है। बुर्जुआ लेखक साहित्य रचना में दिल और दिमाग की समस्या खड़ी करके कहते हैं कि 'साहित्य दिमाग से नहीं दिल से उपजता है।' उनका यह भी मत होता है कि 'दिमाग से उपजा हुआ साहित्य कलाहीन, प्रचारात्मक, सौन्दर्यहीन और रसहीन होता है।' इसके विपरीत वे दिल से उत्पन्न साहित्य को सुन्दर और शाश्वत मानते हैं। प्रतिक्रियावादी लेखक साहित्य में बुद्धिवाद को महत्व नहीं देते। हंसकुमार तिवारी ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। किन्तु यह दृष्टिकोण स्वस्थ एवं लोकोपकारी साहित्य की रचना के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो चुका है। पूंजीवादी लेखक

जिस वस्तु को आत्मा मानते हैं क्या उसका अस्तित्व मस्तिष्क से परे और सर्वोपरि होता है ?

मस्तिष्क ही मानव शरीर का वह केन्द्र स्थल है जहां से उसका प्रत्येक कार्य संचालित होता है, जो हर प्रकार की अनुभूतियों तथा अनुभवों को ग्रहण करता है, और जहां से सभी विचार उपजते हैं। इस मस्तिष्क का अस्तित्व तभी तक होता है जब तक शरीर जीवित है। मृत्यु के उपरान्त मस्तिष्क की सभी क्रिया शीलता बन्द हो जाती है। इसलिये वह शाश्वत नहीं है। किन्तु बुर्जुवा विचारक मानव शरीर के भीतर इस मस्तिष्क के अतिरिक्त एक अन्तरात्मा का वास मानते हैं और उसे शरीर तथा मस्तिष्क से अधिक महत्व प्रदान करते हैं। वे अन्तरात्मा को अमर एवं शाश्वत मानते हैं और साहित्य को केवल अन्तरात्मा के विकास का साधन बताते हैं। इस प्रकार वे शून्य में विचरण करते हैं। मानव शरीर के भीतर मस्तिष्क के अतिरिक्त अन्तरात्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। वस्तुतः वे जिसे अन्तरात्मा कह कर पुकारते हैं वह मस्तिष्क और उसकी विभिन्न क्रियाओं का एक अंग है। वह सूक्ष्म मन है। स्पष्ट है कि पूंजीवादी विचारकों का यह दृष्टि-कोण नितांत खोखला और तत्वहीन है और उसका एक मात्र उद्देश्य सर्वसाधारण के दिमाग में भ्रम उत्पन्न करना है ताकि साहित्य जनता से अलग रहे। वे इसी विचारधारा की आड़ में निरा विचारहीन और विकारग्रस्त साहित्य उत्पन्न करके समाज में शोषण का वातावरण बनाये रखते हैं। हंसकुमार तिवारी का यह विचार 'जो दिल के बजाय दिमाग से सोचते हैं उनके लिए विज्ञान आदि विषय हैं' इसी प्रकार की विचारधारा है। सोचने का काम केवल दिमाग करता है दिल नहीं। दिल का काम तो रक्त संचार करना है। बिना दिमाग के किसी प्रकार का साहित्य नहीं रचा जा सकता, न विज्ञान ही। बुद्धि ही समस्त ज्ञान विज्ञान, साहित्य आदि की सृष्टा है। अतएव बुद्धिवाद ही साहित्य को स्वस्थ, ज्ञानपूर्ण, विवेकपूर्ण और सुन्दर स्वरूप प्रदान कर सकता है।

हृदय तत्व की प्रधानता मानने वाले कला के लिये कला की रट लगाते है और पतनशील साहित्य की सृष्टि करते हैं।

इसीलिये हंसकुमार तिवारी को यह भी कहना पड़ा है कि उनकी रचनायें वादों के विवाद से दूर हैं और वे किसी खास श्रेणी के लोगों के लिए नही लिखी गई है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे त्रिशंकुओं के लिये लिखी गई है। हंसकुमार तिवारी की यह विचारधारा भी उतनी ही जर्जर और विकारग्रस्त है जितनी कि पहली और उनके इस कथन में उनके हृदय की दुर्बलता, साहसहीनता और एक प्रकार का हीन-भाव छिपा हुआ है। उस अर्थ में भी वे बुर्जुआ लेखकों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी दृष्टिकोण ने उनकी कविताओं के भाव पक्ष को भी दुर्बल बना दिया है।

कोई भी व्यक्ति आज इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकता कि भारतीय समाज विभिन्न वर्गों और श्रेणियों में विभाजित है, जिनका आधार सम्पत्ति का स्वामित्व और बँटवारा है। यदि श्रेणीगत समाज का कोई लेखक कहे कि वह किसी खास श्रेणी के लिये नहीं लिखता तो स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि फिर वह किसके लिये और क्यों लिखता है। यह भी सच है कि वर्गगत समाज में जो साहित्य उच्च वर्ग के लिये लिखा जायगा वह निम्न वर्ग के लिए नहीं होगा और वह समाज के बहुसंख्यक जन समुदाय के जीवन से दूर होगा। अतएव वह जन-विरोधी और प्रतिगामी होगा। फिर यह मानना भी गलत होगा कि वह हर प्रकार के वादों के विवाद से बहुत दूर है। यह नितांत असम्भव और असत्य सिद्धान्त है, साथ ही साथ साहित्य समाज और जीवन के विकास के लिये हानिकारक भी। दुर्भाग्य से हंसकुमार तिवारी अभी इसी विचारधारा में लिपटे हुए हैं।

वे प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति के सौन्दर्य में लीन होकर उन्होंने अपने मन से बातें की हैं और जीवन तथा जगत के अनुभवों और अपने विचारों को प्रगट किया है। किन्तु उनकी मुख्य विशेषता यह है कि

उन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण कम करके उसे केवल माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया है और उसे अपने विचारों को प्रकट करने का साधन बनाया है। वे प्रकृति के नाना रूपों के साथ अपने मन के विचारों का साम्य स्थापित करने में सफल सिद्ध हुये हैं। उनकी अनुभूति में प्रौढ़ता और गहराई है। नव वर्ष के अभिनन्दन गान में उन्होंने लिखा है कि :

बुझ गये दीप खोये तारे, विहंसा बसुधा का भव्य भाल
उतरा नभ खिड़की खोल आज किरणों के रथ पर नया साल
रोया पतझड़ में वृद्ध वर्ष सूखे पत्तों की पहन माल

(रिमझिम)

इसी प्रकार "चैत की दोपहर" का चित्रण करते हुए हंसकुमार ने लिखा है कि :

पीले पत्तों के मर्मर में चैती दोपहरी रोती है
सब सूना सूना लगता है हर ओर उदासी है छाई
आलस का मादक सम्मोहन यह हवा कहां से ढो लाई
पहलू में कभी खटकती कुछ,कुछ व्यथा सजग सी होती है।

(अनागत)

और "आया बसंत" शीर्षक कविता में कवि ने प्रकृति और जीवन का चित्र इन शब्दों में उतारा है :

हंसती चाँदी सी धुली रात
प्राची पर सोने का प्रभात
हर रोग, शोक, संताप, श्रान्ति
किस स्वर्ग विपिन का बहा वात
जीर्णता युगों की लपट एक
ले पलक मारते हुई शान्त

(अनागत)

इसी प्रकार अन्य स्थलों में भी कवि ने अपने मन की अवस्थायें प्रकृति के नाना स्वरूपों में प्रकट की हैं। उदाहरण के लिये :

लू में आकर छू जाती है किस भूखे दिल की सजल हूक
अथवा—नभ के आंसू हैं ओस धरा के नभ नयनों के मोती हैं
अथवा—मन मलिन चुपचुप सितारे दाँवद्युति के सफल हारे
क्षीर पारावार भू पर उमड़ता अवदात
पूर्णिमा की रात

बादलों मे बिजली चमकते देखकर कवि उस से अपने मन की बात कहने लगता है :—

रूप की रानी सुहासिनि, कष्ट क्या है तू न जाने
हम अमृत सुत किन्तु हमको हाय मिलते हैं न दाने
जो न भूले देखते हैं ज्योति जीवन या जवानी
देवताओं को सुनाना उन अभागों की कहानी
(अनागत)

और शुभ्र चाँदनी को देखकर वह कह उठाता है :—

यह ज्योत्सना
कितनी मधुर उन्नतमना
उज्ज्वल नवल कोमल धवल
ज्यों क्षीर सागर रे सबल
धोता चला जाता जगत से दैन्य दुखमय वासना
(अनागत)

चांदनी रात का सौन्दर्य मन पर जो वासनाहीन प्रभाव डालता है कवि ने इन पंक्तियों मे उस का सुन्दर चित्रण किया है। किन्तु हंस कुमार तिवारी के इस प्रकृति प्रेमी कवि का दूसरा स्वरूप बड़ा दुर्बल है वह घोर आस्तिक हैं। धर्म और ईश्वर पर उनका गहरा विश्वास है। उनके हृदय में मायावादी और नश्वरवादी विचार जमे बैठे हैं। वे संसार और जीवन को क्षण-भंगुर, नाशवान, अत्यन्त लघु और पापी-मायावी शक्तियों से घिरा हुआ मानते हैं। अपनी कविताओं में कभी तो वे ईश्वर की उपासना करते हैं और वैष्णव सम्प्रदायवादी भक्ति कालीन

कवियों की भांति अपने आप को घोर पापी और पतित बता कर जीवन उद्धार करने की गिड़गिड़ाहट करते हैं और कभी इस संसार और जीवन की क्षण भंगुरता का रोना रोते है, उदाहरण के लिये :—

पिता हो, संतान हूँ मैं
दास हूँ मैं, नाथ तुम हो
निपट तर अज्ञान हूँ मैं
हाय आकर हाथ तुम दो
नीचता की खान मैं, पर
दयामय भगवान हो तुम
निखिल जग के प्राण हो तुम
शक्तिमान महान हो तुम

(रिमझिम)

अथवा :

तुम से ही आदि, तुम में ही अंत, तुम काल स्रोत, मैं क्षण नश्वर
तुम सकल सृष्टि की नींव, एक मैं उसका पतला पाया हूँ
तुम चिर चेतन मय प्राण, किन्तु मैं तो मिट्टी की काया हूँ
मैं बिना तुम्हारे कहां नाथ, तुम सत्य और मैं माया हूं
अथवा-जग क्षणिक, जीवन क्षणिक, लघुता यहां विस्तृत अमरपर
अथवा— यह जीवन सुन्दर पर नश्वर
कितना सीमित मेरा अन्तर
अथवा-मेरा तो यह लघुजीवन दो दिन का रे दो छिन का
जग जीवन की धारा में तिरतासा मैं लघु तिनका
चिर जीवन राग सुना कर मुझ को तो है मर जाना

इसीलिये हंसकुमार तिवारी के हृदय में जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टि कोण है। उन्हें जीवन और संघर्ष पर कम विश्वास है। क्योंकि मृत्युवादी विचार धारा उन्हें घेरे हुये हैं। जहां उन्होंने संघर्ष की बात कही भी है वहां उसमें कोई बल और दृढ़ता नहीं प्रतीत होती। हंसकुमार

तिवारी को मृत्यु का इतना अधिक भय है कि वे कहते हैं :—

आता धीरे यह मौन मरण
जग जीवन पर धर प्रबल चरण
खो जायेगी यह स्वर सरिता
सो जायेगी यह प्राण किरण

(रिमझिम)

अथवा-आज भी तो मौत भिक्षा को खड़ी दामन पसारे
सांस दें लूं, कल मदद की याचना मैं भी करूंगा

अथवा-यह जीवन जीभ मृत्यु मुख की

अथवा-है घिरा भाग्य आकाश हाय दुर्भेद्य निराशा के तम से
पर सतत मृत्यु की ओर बढ़े दो धीर चरण भी तो देखो

(अनागत)

हंसकुमार तिवारी में निराशा, असहायता और मृत्यु की यह विचार-धारा इतनी प्रबल है कि उसने उन्हें यह लिखने के लिए विवश किया है कि—

तम में ही मेरा जन्म हुआ, तम में ही होने चला शेष
मैं तो किस्मत का मारा हूं, मैं शेष रात का तारा हूं

(रिमझिम)

अथवा-मैं किसी के भाग्य सा रूठा हुआ हूँ
रात के मृदु स्वप्न सा झूठा हुआ हूं
गगन से टूटा हुआ जैसे सितारा
द्वार से ताड़ित किसी के दीन मैं

(अनागत)

इसीलिए उन्हें शेष सम्पूर्ण समाज और मानव मात्र के जीवन में हिन्सा रुदन, वासना, स्वार्थपरता आदि ही दिखाई देती है, जीवन का उज्ज्वल स्वरूप कहीं नहीं। उन्होंने लिखा है—

मनुज जीवन

दुख मय, हिंसा, घृणा, मद का सघन बन
स्वार्थ से जर्जर सतत रे वासना से चिर मलिन मन

(रिमझिम)

यह सारी विचार धारा और दृष्टिकोण कितनी जर्जर तथा जीवनहीन है यह स्वतः प्रकट है। इससे अकर्मण्यता और पलायन-वादिता की भावनाओं को ही प्रश्रय और प्रोत्साहन मिलता है। आज के समाज में यह दृष्टिकोण अत्यन्त घातक और प्रगतिविरोधी है। इस संसार को कष्टों और पापों की खान मान कर तथा जीवन को क्षण भंगुर और नाशवान मान कर सब कुछ सर्व शक्तिमान ईश्वर के ऊपर छोड़कर हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहना मानव शोषण और दोहन को बनाए रखना है। इस मादक विचार-धारा के प्रभाव में जब निरीह जनता ऊंघने लगती है तब शोषकों को अपने करतब पूरे करने में बड़ी आसानी रहती है। इस यंत्रयुग में तो मानव ने ईश्वर की सत्ता को भी चुनौती देदी है। आज तो प्रकृति मानव की दासी है, न कि मानव प्रकृति का। आज का विकसित मानव महान शक्तिवान है। इसलिए आज समाज के दुख दैन्य, अत्याचार व उत्पीड़न और पूंजीवादी अनैतिकता से उत्पन्न जीवन के पतन को देखकर बजाय इन परिस्थितियों को तथा इन परिस्थितियों को जन्म देने वाली ताकतों को समूल नष्ट करने का आवाहन करने के किसी अदृष्ट, अगोचर शक्ति के भरोसे बैठे रहना जीवन की निष्क्रियता का ही प्रमाण है जो अन्ततोगत्वा हमें पतन की ओर ही ले जाता है। इसलिए इस यंत्र युग तथा अणुयुग का मानव जहां एक ओर प्रकृति से लड़ रहा है और उसे अपने पूर्ण नियंत्रण में रखने की नित्य ही चेष्टा वृद्धि कर रहा है वहां दूसरी ओर वह समस्त जर्जर, शोषणवादी रूढ़िग्रस्त पुरातन विचारधारा और समाज व्यवस्था को भी समाप्त कर रहा है। आज विश्व में नया मानव और नया समाज जन्म ले चुका है। यह कोई कोरी कल्पना नहीं है, प्रत्युत महान सत्य और यथार्थ रूप में आज हमारे सामने उपस्थित है। इस से

आँखें मूँदना सूर्य को परदे में छिपाने के प्रयत्न के समान होगा।

आज जो भी व्यक्ति इस तथ्य को नही समझ पा रहे हैं वे विभ्रम मे पड़े हैं, पथहीन हैं। रफ्तार के इस युग में दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है ढुलमुल नीति की नहीं, अन्यथा हम पीछे छूट जायेंगे। हंसकुमार तिवारी में अभी इस दृढ़ नीति का अभाव है। तभी वे काव्य के क्षेत्र मे एक लक्ष्यहीन पथ पर अग्रसर होते दिखाई पड़ रहे हैं। एक ओर तो उनके सामने जीवन का अंधकारमय, वासनामय, हिन्सा और स्वार्थ से भरा घिनौना और क्षणभंगुर रूप है, और दूसरी ओर वे कहते हैं :—

जीवन तो वह जो चलता है
जो कभी नहीं झुकता नीचे
जो कभी नहीं मुड़ता पीछे
सौ बातों की बात छोड़ आगे ही सदा निकलता है

अथवा-यह जीवन चन्दन की लकड़ी
घिस कर ही गंध लुटाती है
यह जीवन मेंहदी की पत्ती
पिस कर ही रंग दिखाती है (अनागत)

अथवा-आदि से अवसान तक यह समरमय पर अजर जीवन
(रिमझिम)

इस प्रकार वे जीवन को संघर्ष का रूप देते हैं। किन्तु उनके हृदय की संघर्ष की इस भावना का सबसे बड़ा दोष यह है कि वे जीवन के विकास के लिए कष्ट, दुख तथा उत्पीड़न को अनिवार्य मान कर स्वयं कष्ट और दुख का ही समर्थन करने लगते है। तभी तो संघर्ष की यह भावना उन्हें कर्त्तव्य की प्रेरणा नही देती, केवल कामना जागृत करके ही छोड़ देती है। हंसकुमार तिवारी एक कामनावादी कवि हैं, संघर्ष वादी नहीं। उनकी कामनायें किसी संघर्षालु व्यक्ति की कामनाओं से

कम नहीं है। बस वे कोरी कामनायें ही है, उनके पीछे संघर्ष नहीं है, दृढ़ नीति नहीं है। उन्होंने कामना प्रकट की है :—

मैं गाऊं विहगों सा बेसुध होकर
सुख पाऊं स्वर सरिता से जग धोकर

अथवा-दूँ दुखियों को आशा, मूक कंठ में भाषा
कहीं कहीं रह पाये जग के बीच निराशा

फिर उन्होंने यह कामनायें भी प्रकट की हैं कि :—

सब रोग, शोक, संताप सदा को भागे
नवयुग हो नयी ज्योति नवजीवन जागे
सब भीति युगों की विस्मृति में खो जाये
हम सब के तरुण चरण हों प्रतिपल आगे

अथवा-विश्व मैत्री का विमल भाव ममता अतिमाया
जिस के सब अपने हों कोई हो न पराया
ऐसा मम मन
लुटा किरण कण विहंसा जग वन
तूट कर दे जन जन के अपनापन बन्धन को
ऐसा मन हो

अथवा-आज नव निर्माण आये, जीर्ण जग नव प्राण पाये
गर्व से उद्दीप्त मानवता विजय के गान गाये

किन्तु समाज से यह रोग, शोक, संताप कैसे मिटेगा, नवयुग या नव जीवन कैसे आयेगा, एवं मानवता के लिये विजय के गान गाने का अवसर कब और कैसे आयेगा? इन तमाम प्रश्नों का समाधान इन कविताओं से नहीं होता। शायद कवि किसी कल्पतरु के नीचे बैठा है और सोचता है कि कामना मात्र से ही सारी इच्छायें और आवश्यकतायें पूरी हो जायेंगी।

यद्यपि इन कामनाओं के अतिरिक्त हंसकुमार तिवारी ने कहीं कहीं

तीव्र स्वरों में समाज को बदल डालने की बातें भी कही हैं और आत्म बलिदान तक करने की घोषणा की है, जिससे यह तो अवश्य पता चलता है कि उनके हृदय में इस यंत्र युग एवं पूंजीयुग के शोषित-उत्पीड़ित मानव की दुर्दशा के प्रति सहानुभूति की भावना है और वे इस दुर्दशा से उसकी मुक्ति भी चाहते हैं। किन्तु इस महान कार्य की शीघ्र सम्पन्नता के क्या उपाय हैं, क्रांति के द्वारा यह कार्य पूरा होगा या तथाकथित वैधानिक सुधारों से, यदि क्रांति से होगा तो उसका संगठन किस प्रकार किया जाय, आदि तमाम समस्यायें उनके सामने स्पष्ट नहीं हैं। वे क्रांति को समाज परिवर्तन का आधार तो मानते हैं, जैसा कि इन पंक्तियों से प्रगट होता है—

मैं क्रांति दूत, अक्लांत चरण, गढ़ दूँगा
जग की, जीवन की एक नयी परिभाषा

किन्तु यह क्रांति मजदूर-किसानों की क्रांति है जो रूस और चीन आदि देशों में सफल हो चुकी है या यह भारत, बर्मा, मिश्र, ब्रिटेन आदि पूंजीवादी देशों की राष्ट्रीय क्रांति है, यह पता नहीं चलता। कवि की विचार धारा के अनुसार वह वैधानिक सुधारों वाली क्रांति ही है क्योंकि उसने उसके लिए कभी मजदूरों और किसानों का आवाहन नहीं किया है। कवि को तो केवल अपने पर ही भरोसा है—

मैं करूँगा स्वयं जग में युग नया निर्माण कल ही
डाल जाऊँगा नयी मैं जान खुद बलिदान होकर

किन्तु कवि को इतना अवश्य अनुभव हो चुका है कि पुरातन विश्व और समाज व्यवस्था स्वयं अपने विनाश का प्रबन्ध कर चुकी है और उसे केवल अग्नि दान ही शेष है। तभी कवि ने लिखा है —

दुनियाँ फूस बटोर चुकी है
अब दो चिनगारी मैं दूँगा

कवि इस सीमा तक इसलिए पहुँचा है कि वह स्वयं यह देख रहा है कि:—

देखो वहाँ होती खड़ी मीनार है धनवान की
की अर्चना जिसने जनम भर रजत के भगवान की
बहु राजपथ स्मृति मौध, विद्यालय बने हैं नाम से
इस देश को ही बेंच कर जिसने रकम कुछ दान दी
जो मर मिटा है देश पर दल पर, नहीं परिचय कहीं
जुटता उसी के बाल बच्चों को अनाथालय नहीं

हंसकुमार तिवारी के कवि का यही मुख्य परिचय है। प्रकृति का प्रेमी अन्तदर्शी कवि समाज और जीवन का कालुष्य देख कर निराशवादी और नश्वर वादी बन गया। किन्तु यन्त्र और पूंजी के शोषण को देख कर उसका उपचेतन मानस अब सचेतन स्थिति की ओर अग्रसर हुआ है। किन्तु फिर भी उद्देश्यों और साधना के बारे में वह अभी स्पष्ट नहीं है। पुरातन के प्रभाव और नवीन के उलझाव में कवि अभी स्पष्ट राह नहीं बना पाया है। यही उसका दुर्बल स्वरूप है।

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने हंसकुमार तिवारी का परिचय देते हुए लिखा है कि, "जो तरुण साहित्यकार प्रचार को नकली टांगों से न चलकर साधना और संयम के साथ जीवन में बढ़ रहे हैं उनमें बिहार के गीतकार-अलोचक हंस कुमार तिवारी एक श्रेष्ठतम प्रतिनिधि हैं। उनकी साहित्यिक प्रतिभा उस पारिजात की तरह है जो बिखरने के बाद भी महकता रहता है। उनके व्यक्तित्व की सादगी और सरलता उनके गीतों की तेजस्विता और बाँकपन में स्वयं खिल उठी है।"

प्रभाकर जी के इस कथन में पार्याप्त यथार्थता है, कोरी प्रशंसा नहीं है। निस्संदेह नयी पीढ़ी के प्रतिभावान साहित्कारों में हंसकुमार तिवारी का नाम शीघ्र ही स्मरण में आजाता है। किन्तु उनकी समर्थ प्रतिभा अभी उस क्षेत्र से दूर है जहां पर नये युग का निर्माण हो रहा है।

४

भवानी प्रसाद मिश्र
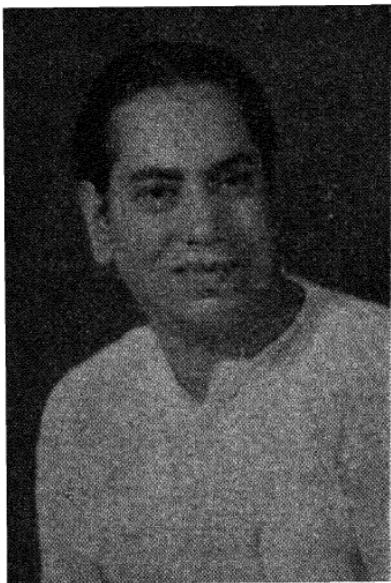
"मैं जीवन को संघर्ष नहीं, लीला मानता हूँ; उसके संघर्षों भी लीला।...

दर्शन में अद्वैत, वाद में गान्धी का और टेकनीक में सहज-लक्ष्य ही मेरे बन जायें, ऐसी कोशिश है।"

भवानी प्रसाद मिश्र,
'कल्पना' कार्यालय,
८१३, बेगम बाजार,
हैदराबाद (दक्षिण)

★

मध्य प्रदेश में नये-कवियों की जो पंक्ति आज आगे बढ़ रही है भवानी प्रसाद मिश्र उस पंक्ति के एक सिरमौर सदस्य हैं। गांधीवाद के अनुयायी, आदर्शोन्मुख-यथार्थवादी और भाषा तथा शैली में सहजता तथा बोधगम्यता के पक्षपाती भवानी प्रसाद मिश्र मध्यप्रदेश के नये कवियों में सर्वाधिक लोक प्रिय हुए हैं और उनकी ख्याति ने साहित्य-प्रांगण में अपना स्थान प्राप्त कर लिया है।

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म ३६ वर्ष पूर्व २३ मार्च, सन् १६१४ को मध्य प्रांत (अब मध्य प्रदेश) के होशंगाबाद नगर में एक मध्य वर्गीय साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता पंडित सीताराम मिश्र जो मध्य प्रांत के शिक्षा-विभाग में कार्य करते थे, अब सरकारी पेन्शन पर रिटायर्ड जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपके पूर्वज बुन्देलखंड (उत्तर-प्रदेश) के निवासी थे। किन्तु आपके पितामह बुन्देलखण्ड से मध्य प्रांत में जाकर बस गये थे। आपके पूर्वजों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। पैतृक सम्पत्ति के रूप में थोड़ी सी जमीन अब भी आपके परिवार के पास शेष है। आपका परिवार काफी भरा-पूरा है। माता, पिता और पांच भाई तथा ६ बहनों का एक विशाल कुटुम्ब है। आप स्वयं भी विवाहित हैं और आपके तीन पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं। आपने बी० ए० तक उच्च शिक्षा ग्रहण की है और शिक्षण तथा लेखन ही आपके मुख्य व्यवसाय रहे हैं। अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में आप को कई बार स्थान-परिवर्तन भी करने पड़े हैं। किन्तु आज कल आप हैदराबाद (दक्षिण) में "कल्पना" नामक हिन्दी मासिक-पत्र के सम्पाद-

कीय विभाग में कार्य कर रहे हैं। कुछ समय तक आपने वर्धा की राष्ट्र भाषा प्रचार समिति में भी सेवा-कार्य किया है।

आपने बहुत छोटी आयु में ही यानी अपनी बाल्यावस्था में काव्य रचना का कार्य आरम्भ कर दिया था। जहाँ तक आपको स्मरण है, आपने शायद सन् १६२६ में कविता लिखना शुरू किया था। किन्तु आपका कहना है कि—"मैंने पहली ढंग की रचना सन् १६३० मे लिखी थी।" सब से पहली बार आपकी कविता विख्यात मासिक पत्र "चाँद" में प्रकाशित हुई थी। तब से अब तक आपके पास लगभग २३-२४ वर्षों की लिखी हुई बहुत सी रचनाओं का भंडार है। किन्तु अब तक आपकी कविताओं का एक भी संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। फिर भी आपकी रचनाएँ यदाकदा हँस, कल्पना, आजकल, नया समाज आदि पत्रों में देखने को मिला करती है।

भवानी प्रसाद मिश्र यथार्थवादी व्यक्ति है। किन्तु एक अभिजात वर्गीय क्रांति द्रष्टा में जीवन के वैषम्य, दुःख-दैन्य तथा पराधीनता के प्रति जो एक सुधारवादी-उदारवादी दृष्टिकोण होता है, कुछ वैसा ही दृष्टिकोण भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं तथा विचारधारा मे भी प्राप्त होता है, यद्यपि उसमे तेजी और उतावलापन भी है। गांधीवाद के सत्य-अहिंसावादी सिद्धान्त का आपकी विचारधारा पर गहरा तथा स्पष्ट प्रभाव है। आपने स्वयं लिखा है कि, "दर्शन में अद्वैतवाद, में गान्धी का और टेकनीक मे सहज-लक्ष्य ही मेरे बन जायें, ऐसी कोशिश है।"... जीवन के प्रति दृष्टिकोण के सम्बन्ध में आपने स्पष्ट बताया है कि—"मै जीवन को संघर्ष नहीं, लीला मानता हूँ, उसके संघर्षों को भी लीला। और इसलिए हार-जीत की उदासी या बदतमीजी को बचाना चाहता हूँ।" उनके इस कथन से स्पष्ट है कि भवानी प्रसाद मिश्र संघर्षवादी व्यक्ति नहीं है, बल्कि लीलावादी हैं और जीवन को भाग्य के भरोसे छोड़े हुए हैं। जो व्यक्ति जीवन के कठोर संघर्षों को भी लीला मानता है वह उनकी गम्भीरता और महत्व के प्रति आंखें बन्द रखता है और

उन्हें चुनौती न देकर उनके आगे साहसहीनता की भावना प्रगट करता है।

भवानी प्रसाद मिश्र का किसी राजनीतिक संस्था से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। किन्तु आप सर्वोदय समाज के सदस्य हैं। आप विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ही केवल एक महान कवि मानते हैं। क्योंकि, आपके मतानुसार—"उसने देश के भूत, वर्तमान और भविष्य को बड़े सही तरह से देखा और सही तरह से पेश कर दिया। देश और काल को सामने रखकर भी वह सर्व-देश और सर्व-काल की महत्ता अपने लिखान में समाये रह सका।" इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि भवानी प्रसाद मिश्र पर रवीन्द्रनाथ टैगोर और उनके साहित्य का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। यद्यपि इस सम्बन्ध मे आपने कहा है कि—"पड़ा होगा।" किन्तु किस कवि, साहित्यकार या साहित्य का प्रभाव आप पर अधिक पड़ा है, इसे आप स्वयं स्पष्ट रूप में जान नहीं सके हैं।

साहित्य की व्याख्या करते हुए भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि—"वह व्यक्ति और समाज के विकास का एक अच्छा साधन है।" काव्य की परिभाषा आपने संस्कृत के प्राचीन साहित्याचार्यों के अनुसार "रसात्मक वाक्यं" के रूप में ही की है। किन्तु अपनी कविताओं के सम्बन्ध में आपने बताया है कि—"मैंने अपनी कविता में प्रायः वही लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है।...बहुत मामूली रोज मरा के सुख दुख मैंने इनमे कहे हैं, जिनका एक शब्द भी किसी को समझाना नहीं पड़ता।"

कवि की इस उक्ति से स्पष्ट है कि उसने यथार्थवादी बनने की चेष्टा की है। जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया वही काव्य के रूप मे गा दिया। कोरी कल्पना की रंगीनी और पच्चीकारी मे उलझने के प्रयत्न नहीं किए। किन्तु फिर भी समाज के यथार्थ को प्रगट करने मे उसने दूरागत आदर्श का दामन नहीं छोड़ा। भवानी प्रसाद मिश्र ने अभिव्यक्ति को समस्या नहीं बनाया है, जैसा स्वयं उन्होंने कहा भी है। उनकी

रचनाओं में भावों का उन्मुक्त आवेग है, छन्द-बन्धन और अलंकारों के अवरोध नहीं। भावों की अभिव्यक्ति मे जटिलता को स्थान नहीं दिया गया है। इस प्रकार उन्होंने जटिलता, रहस्यात्मकता और दुरूहता को ही कला मानने के जर्जर सिद्धान्त को आज के अन्य प्रगतिवादी कवियों की भाँति ही अस्वीकार कर दिया है।

उन्होंने स्पष्ट कहा है—

कलम अपनी साध
और मन की बात बिलकुल ठीक कह एकाध
ये कि तेरी भर न हो तो कह
और बहते बने सादे ढंग से तो बह
जिस तरह हम बोलते है, उस तरह तू लिख
और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख
चीज ऐसी दे कि जिसका स्वाद सिर चढ़ जाय
बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल बन बढ़ जाय

इस प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र का कवि व्यक्ति की सीमाओं में कभी बन्द नहीं रहना चाहता। उसके अन्दर वह सामाजिक भावना है जो व्यक्ति को समाज के रूप में देखती है और फिर उसे समाज के सुख-दुख को अपनी पंक्तियों मे चित्रित करने के लिए विवश करती है। सामाजिक दुख-दैन्य और उत्पीड़न उसके मन मे जो आग धधकाता है, वह उसे ही अपने गीतों मे समाज के सामने ला रखता है। उसका मन जब तीव्र विद्रोह कर उठता है, तब वह किसी अज्ञात से प्रश्न करता है—

शब्दों में मन की ज्वाला को
भड़काने का भाग दिया क्यों
सजन असम्भव के चरणों में
मुझको यह अनुराग दिया क्यों
क्यों असाध्य-साधन की ममता
सर्वोपरि हो गई प्राण में

क्यों जग के सुख-शोक चाहता हूँ
चित्रित कर सकूँ गान में ?

और कवि अपने दायित्वों को निभाने में जुटा रहता है। वह अपने आप को और अपनी लेखनी को समस्त समाज की सेवा और रूप-सज्जा के लिए समर्पित कर चुका है। तभी वह कामना करता है—

मेरे मन में किरन, प्राण में रस, गीतों में नेह चाहिये
शाल-पलाश-ताल-वन जैसी मुझको हर-हर देह चाहिये
जिसकी छाया में बैठ यदि कोई, अपनी थकन मिटाए

तभी कवि अपने को धन्य समझेगा। जब तक वह अपने इन दायित्वों को पूरा नहीं कर लेता, उसे सच्ची मानसिक सुख-शांति न मिलेगी। क्योंकि वह जानता है कि जब तक समाज में दासता है, वह सुखी कैसे रह सकता है? इसलिए वह समाज में नवीनता और परिवर्तन लाना चाहता है। किन्तु यह पुराने बन्धनों और पुरानी मान्यताओं तथा रूढ़ियों को तोड़े बिना सम्भव नहीं है। अस्तु वह कह उठता है—

नये गीत लिखने का मन है
तब तू काट पुराने बन्धन
नये गीत इसलिये कि तेरे मन में भाव नये उठते हैं
तेरे मन को कई पुराने नये-नये होकर लगते हैं

लेकिन इन गीतों की रचना कैसे होती है? नये भाव मन में कब मचलते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर भी भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी रचनाओं में दिया है। उनका हृदय बड़ा कोमल है। पीड़ित-जनों के प्रति सहज-सहानुभूति की अजस्रधारा उससे स्वभावतः फूट पड़ती है। तभी तो उनके गीतों का एक-एक शब्द पीड़ा और दुख की गहन अनुभूति से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। उनमें व्यक्ति और समाज के आँसू और आहें समाई रहती हैं :—

इन गीतों के शब्द
दुःख के दाम खरीदे-बेचे जाते

सौ-सो आह निकल जाती है
जब तुम एक-एक पद गाते ।

यह इन गीतों का प्रभाव है, क्योंकि उनको जन्म देने वाली कवि की अनुभूति सच्ची और पैनी है । इनकी रचना सरल नहीं है । कवि को जन-जीवन के उद्धार के लिये कठोर तप करना पड़ता है, अपनी कंचन-काया की सीता की भांति अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है-तब यह गीत बनते हैं । किन्तु यह गीत अंगारे नही हैं, कमल के फूल है । समस्त समाज के लिये कवि के यह एक-मात्र उपहार हैं । कवि बतलाता है :—

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं
इन्हें हूं बीच से लाया
न समझो तीर पर के हैं

फूल लाया हूँ कमल के
क्या करूं इनका
पसारें आप आँचल
छोड़ दूं
हो जाय जी हलका

दिल की गहराइयों से उत्पन्न यह गीत कवि समाज को दे देना चाहता है, ताकि उसके दिल का भार और दुःख कुछ हलका हो जाय । क्योंकि इन गीतों मे उसने अपनी और अपने समाज के सुख-दुःख की कहानियां गाई हैं । उसके यह गीत बड़े मूल्यवान है ।

भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं के भाव-तत्व की यही मुख्य विशेषता है । उनका हृदय अत्यन्त स्नेहशील और अनुराग पूर्ण है । उनका यह अनुराग जड़ और चेतन तथा मानव और प्रकृति के प्रति समान रूप से है । एक ओर तो वे मानवतावादी और मानव मात्र के प्रेमी हैं और दूसरी ओर प्रकृति का सौन्दर्य उन्हें इतना प्रिय है कि वह उन्हें आत्मसात् सा कर लेता है । उन्हें प्रेम से प्रेम और घृणा से घृणा है । वे एक नीतिवादी की भाँति कहते हैं :—

कितने भी गहरे रहें गर्त

हर जगह प्यार जा सकता है
कितना भी भ्रष्ट जमाना हो
हर समय प्यार भा सकता है

फिर उनका तरल-मानवतावादी हृदय कह उठता है :—

जो गिरे हुए को उठा सके
इससे प्यारा कुछ जतन नहीं
दे प्यार उठा पाये न जिसे
इतना गहरा कुछ पतन नहीं
देखे से प्यार भरी आँखें
दुस्साहस पीले होते हैं

हर एक धृष्ठता के कपोल
आँसू से गीले होते हैं
तो सख्त बात से नहीं
स्नेह से काम जरा लेकर देखो
अपने अन्तर का नेह
अरे देकर देखो

यद्यपि कवि के इस कथन पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव है। किन्तु उसके हृदय की यही दृढ़ प्रेम-भावना जब प्रकृति की ओर अग्रसर होती है तब मानव और प्रकृति के अलगाव को नष्ट कर दोनों का नैकट्य और एकात्मता स्थापित करती है। इन्सान प्रकृति को सदा से प्यार करता आया है और प्रकृति सदा से ही इन्सान को अपने विभिन्न रूप और सौन्दर्य तथा सम्पदा से सुखी और समृद्धिशाली बनाती आई है। मानव और प्रकृति का यही शाश्वत प्रेम और अटूट सम्बन्ध ही मानव के जीवन का आधार रहा है। यद्यपि समाज में व्यक्ति-व्यक्ति से पृथक है, उनके बीच वर्ग और खाइयाँ है। किन्तु प्रकृति इन वर्गों, खाइयों और भेदों को पाट कर समस्त मानव-मात्र को एक प्रकार से देखती और प्यार करती है। वह इन भेदों को नहीं मानती। इसीलिये भवानी प्रसाद मिश्र

का गांधीवादी, प्रकृति प्रेमी कवि बसंत-ऋतु के यौवन और सौन्दर्य श्री को देखकर कहता है :—

सर्व और साधारण उस दिन
सर्व और साधारण कब थे
राजा उस दिन राजा था क्या
गरीब जन उस दिन गरीब कब थे

क्षुद्र क्षुद्रता भूला अपनी
निज महत्व भूली महानता
किसे तुच्छ, किसको विराट
वह अनाहूत आनन्द मानता ?

प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द सबके लिए समान है। प्रकृति ही अभाव-पीड़ितों और गरीबों की सम्पत्ति है। किन्तु कवि के इस गांधी वादी दर्शन का मुख्य दोष यही है कि वह यह नहीं देखता कि प्रकृति के इस सौन्दर्य के सुख व आनन्द भोग के लिए हमारे देश के सर्व-साधारण और गरीबों के पास राजाओं और अमीरों की भांति साधन और अवसर कहां है ? देश के कितने किसान और मजदूर काश्मीर की सुषुमा तथा विभिन्न स्थानों के प्राकृतिक वैभव के दर्शन करने जाते है ? शायद एक भी नहीं। क्योंकि इस देश की सर्व साधारण जनता आर्थिक साधनों से पूर्णतया हीन और वंचित है तथा इन स्थानों तक पहुँचने के समस्त साधन अभिजात वर्ग के हाथों मे हैं। हमारे देश मे सोवियत रूस की भांति काश्मीर व देश के अन्य प्राकृतिक वैभव व सुषुमा के केन्द्रों मे मुफ्त वास-स्थान, भ्रमण आदि के लिए महल छुट्टियां बिताने के केन्द्र व यातायात के साधन कहां हैं। भवानी प्रसाद मिश्र समस्या के इस पहलू की ओर दृष्टिपात नही करते, क्योंकि उनकी आँखों पर गांधीवाद का चश्मा लगा है। वे प्रकृति-श्री के अनाहूत आनन्द मे वर्ग-भेदों को समाप्त हुआ पाते है। फिर क्रांति की क्या आवश्यकता ?

भवानी प्रसाद मिश्र का कवि प्रकृति को केवल उसकी सौन्दर्य श्री की वजह से ही प्यार नहीं करता, जिसके तमाम चित्र उसने 'सतपुड़ा के घने जंगल', 'चलो फागुन की खुशियाँ मनाएँ', 'फिर फूलों वाला रित बसन्त की आई', 'पूनो की रात रे चमकी किरन', 'यौवन वेला मे बसन्त के मधुमय क्षण सिमटे आते थे', 'यह रात है', 'क्या बात है इस रात की'—आदि कविताओं और गीतों मे अत्यन्त सुन्दर व मनोहारी चित्र उतारे हैं; बल्कि वह प्रकृति को इस लिए भी प्यार करता है कि उसके जैसे पीड़ित व दुःखी हृदय को वह सहानुभूति प्रदान करती है तथा अकेलों की साथिन है। आसमान के तारों को देखकर कवि कहता है—

कितनी बार लगा है मेरे दुख के ये साथी हैं
रात-रात भर इसीलिये तो जगने के आदी हैं
मै पृथ्वी का मानव हूँ, ये आसमान के तारे
तो भी मेरे दुःख में साथी रहते हैं बेचारे

निस्सन्देह शोषित जनों की दीनता का इन चरणों मे मार्मिक चित्रण है।

भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं की एक अन्य विशेषता रवीन्द्रनाथ टैगोर की भाव धारा व शैली का प्रभाव है, जिसके उदाहरण उनमे कई स्थानों पर मिलते हैं। मनोवैज्ञानिकता, दार्शनिकता तथा एक अज्ञात शक्ति के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना भवानी प्रसाद की कुछ रचनाओं मे भी पाई जाती है, जैसे—

क्या तुम ही मुझको पुकारते हो
घन की वाणी में हे ?
आज क्षितिज की नीली रेखा
में तुमको ही मैंने देखा
लुके-लुके क्या तुम्हीं ओढ़नी
उस झीनी-झीनी में हे ?

अथवा—अंधकार को छू कर तुमने कितने ग्रह-नक्षत्र जलाये
पत्थर के प्राणों को छू कर तुमने कितने स्रोत बहाए

अथवा 'गोपाल', 'तुझको कौन जगाता है रे' और 'कोई आया' शीर्षक कविताएँ, जिनमे मनोवज्ञानिकता तथा दार्शनिकता का आश्रय ले कर कहीं-कहीं रहस्य की सी भावना उत्पन्न की गई है। यद्यपि कवि की यह उत्तम रचनाएँ हैं किन्तु वे कभी-कभी द्वि-अर्थ वाली प्रतीत होने लगती हैं। वे ऐसी सम्भावना उत्पन्न करती हैं कि आध्यात्मिक भावना का व्यक्ति उस अज्ञात शक्ति को ईश्वर मान सकता है और भौतिकवादी व्यक्ति उसे किसान या श्रमिक समझ सकता है।

भवानी प्रसाद मिश्र साहित्य के उद्देश्यों और प्रभाव से परिचित है। प्रयोजन हीन साहित्य उन्हे प्रिय नहीं है। वे साहित्य को व्यक्ति और समाज के विकास का एक अच्छा साधन मानते है। इस प्रकार सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साहित्य को साधन के रूप मे प्रयुक्त करने के सिद्धान्त मे प्रगतिवादी कवियों से उनमे कोई विभिन्नता नहीं है। किन्तु लक्ष्य की महान विभिन्नता उनमे अवश्य है। वह इसलिए कि वे भौतिक-वादी कम, तथा आदर्शवादी अधिक है और उन पर सर्वोदय-सिद्धान्त तथा गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है। वे साहित्य को जिस सामा-जिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते है वहाँ पहुँच कर भी व्यक्ति शोषण और आर्थिक-दासता से मुक्ति नहीं पा सकता। लक्ष्य की महानता न होने से साधन की महानता भी नष्ट हो जाती है। इसी लिए भवानी प्रसाद मिश्र की विचारधारा के अनुरूप साधन के रूप मे भी साहित्य का महत्व तथा महानता कम हो जाती है।

यद्यपि वे अपनी रचनाओं में स्थल-स्थल पर यह कहते है कि—

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोपड़ी, मिट जायँगे नीलम-निलय भी

अथवा— तुझे मुक्ति तो पाना ही है
पगडंडी पर क्षितिज चीरते हुए तुझे तो जाना ही है

अभय प्राण हे, कंठ खोल कर
डमरू के स्वर बोल-बोल कर
ज्वालाओं से दिशा सजा कर अग्नि गान तो गाना ही है

अथवा— सामने सीधे चलो
भूलों को प्यार करो, फूलों को प्यार करो
सावन की शोभा को आँखों में भर लो
लेकिन सिंगार करो
तुम श्रम से
आगी के बीचों पलो

अथवा— लहर-लहर तेरी सीढ़ी है
देख कि क्या कहती पीढ़ी है
यह तो तेरा कुरुक्षेत्र है
भव-सागर का नीर नहीं है

अथवा—आस्माँ का क्या कि धरती देख धू-धू जल रही है
हर घड़ी जैसे कयामत के लिए ही पल रही है
चल रही है नाश की क्रीड़ा, प्रलय हुँकारता है
आज मानवता कि अपने हाथ टूटे मल रही हैं
इस जलन के बीच अपनी नींद किस पर बो सकेगा

किन्तु अन्ततः सामन्तवादी प्रथा के खण्डहर भारत के ग्रामों के शोषण पर निर्मित पूंजीवादी सभ्यता के प्रतीक नगरों के वैषम्य पर एक रूपक बाँध कर जब वे कहते हैं कि—

छोटी सी एक पहाड़ी है
है नगर एक, है गाँव एक, वे दोनों मत मिलने पायें
इसके उपवन के फूल नहीं उसके खेतों खिलने पायें
इसलिए खड़ी है सिर ताने, इसलिए बीच में आड़ी है

तब वे इस वैषम्य को मिटाने के लिए आर्थिक-शोषण, दासता तथा पूँजी-आधिपत्य की प्रतीक इस पहाड़ी को, जो भारत के ग्रामों की,

करोड़ों जनता की और देश की प्रगति को रोके हुए हैं, धूल बना कर उड़ा देने या नष्ट कर देने की बात नहीं कहते। बल्कि वे सर्वोदयवादी की भाँति कहते है कि हम नगर वासी इस दीवाल को फाँद कर गाँवों की ओर जाएँ और उनका सुधार करें। वे स्पष्ट कहते हैं—

यह काव्य असुन्दर हो चाहे लेकिन इसमें है तथ्य एक
किसलिए नहीं हम चढ़ उतरें, छोटी सी अगर पहाड़ी है

भवानी प्रसाद मिश्र की समस्त विचारधारा का यही निष्कर्ष और लक्ष्य है। उनके मतानुसार देश की समस्याओं का यही हल है, जिसे प्राप्त करने के लिये वे साहित्य को साधन मान कर प्रयुक्त कर रहे हैं। वे सर्वोदयवादी की भांति देश की प्रगति के लिए वर्तमान अर्थ-व्यवस्था के मूल स्तम्भों और आधारों को उदारता पूर्वक बनाए रखना चाहते हैं। यही एक महान दोष है। क्योंकि यह नितांत क्रांति विरोधी विचार धारा है।

फिर भी वे एक अत्यन्त सजग कवि हैं। वर्तमान पूंजीवादी समाज मे, जिसका मुख्य आधार न केवल कच्चे व उत्पादित माल की मुनाफा खोरी के आधार पर खरीद-बिक्री है, बल्कि इन्सान की इज्जत, धर्म, ईमान, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि भी जहां खरीदे-बेचे जाते हैं, एक साहित्यकार की क्या दुर्गति और दुर्दशा होती है, इसका एक अत्यन्त मार्मिक, व्यंग्यपूर्ण व वास्तविक चित्रण भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी सर्व विख्यात रचना "गीत फरोश" शीर्षक कविता में किया है। वे कहते है :—

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ

... ...

इन दिनों कि दुहरा है कवि-धंधा
है दोनों चीजें व्यस्त-कलम कंधा

... ...

जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको

पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान
जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान
मैं सोच-समझ कर; आखिर
अपने गीत बेचता हूँ

... ...

है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार हार कर
गीत बेचता हूं
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ

इस सम्पूर्ण रचना में वर्तमान अर्थ व्यवस्था पर तीखी और गहरी चोट है, जो हमें तिलमिला देता है और अपने दुर्भाग्य को बदल देने के लिये विवश करती है। इसीलिए भवानी प्रसाद मिश्र का प्रत्येक व्यक्ति को अंतिम संदेश है कि :—

माथे को फूल जैसा
अपने चढ़ा दे जो
रुकती सी दुनिया को
आगे बढ़ा दे जो
मरना वही अच्छा है

भवानी प्रसाद मिश्र कवि सम्मेलनों को कोई बुरी चीज नहीं मानते और वे उनमें भाग लेते हैं। किन्तु उनकी इच्छा है कि "यदि कवियों में और सौहार्द रहे तो वे और अच्छे जान पड़े।" अर्थात् वे कवियों में पारस्परिक सौहार्द, स्नेह और सहयोग की भावना कम पाते हैं। अपने जीवन की महत्वाकांक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि—"मैं जिनके पास भी बैठूँ उनको अच्छा लगूँ।" अपनी इसी भावना को उन्होंने अपनी एक रचना में इस प्रकार प्रगट किया है—

सभी का मैं बनूँ, सब बन सकें मेरे

नहीं कुछ अन्य हो पाये
बसे वह प्यार की बस्ती
कि जिसमें हर किसी का दुःख मेरा शूल हो जाए
मुझे तिरसूल भी मारे कोई
यदि दूर करने में उसे तो फूल हो जाए

भवानी प्रसाद मिश्र के कवि और व्यक्तित्व का यही मुख्य स्वरूप है। उनमे गिरि की चोटी तक पहुंचने की क्षमता प्रतीत होती है।

५

वीरेन्द्र मिश्र
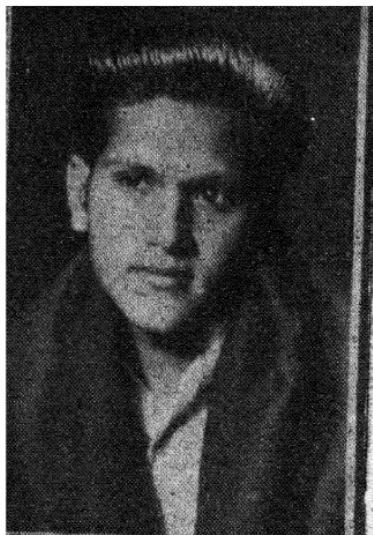
"वस्तु की स्वाभाविकता को अपनी तरह से कह देने में ही कला का सम्मान है।......

"आधुनिक हिन्दी कविता पर जीवन की जिन तीव्रतम अनुभूतियों का प्रभाव पड़ रहा है मैं अपने काव्य में उन्हें विविध कलारेखाओं द्वारा चित्रित कर उनमें सजीवता लाने के लिए प्रयत्नशील हूँ।"

वीरेन्द्र मिश्र
औंधे का बाज़ार, लश्कर,
ग्वालियर

★

नयी पीढ़ी के कवियों की शीर्ष पंक्ति में अति शीघ्र अपना स्थान बना लेने वाले वीरेन्द्र मिश्र हिन्दी के वे तरुण कवि है जो वर्तमान युग और जीवन की विराटता तथा यथार्थता को अपने काव्य में समेट कर माँ सरस्वती के मन्दिर मे ज्योति और प्राण के दीप जला रहे हैं। वीरेन्द्र के हृदय से कविता ऐसे बही है जैसे ऊंचे गिरि से सतत् प्रवाहिनी सरिता, जो धरती को हरी ओढ़नी ओढ़ा कर असंख्य नर नारियों को जीवन और प्राण देती है। मालूम होता है कि जैसे वे साधना की प्रज्वलित मशाल लिए आगे बढ़ते जा रहे हैं।

वीरेन्द्र का वैयक्तिक जीवन आग परसोने की तरह तप तप कर आगे बढ़ रहा है। वे अपने जीवन की २५ तप्त दोपहरियां पार कर चुके हैं। उनका जन्म ७ जनवरी १९२८ को एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार मे मध्य भारत (ग्वालियर राज्य) के मुरेना नामक स्थान में हुआ था। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश मे कानपुर जिले के अन्तर्गत ग्राम सचेंडी के निवासी थे, जिनका मुख्य कार्य पंडिताई था। किन्तु वीरेन्द्र को कवि होने का वरदान स्वयं अपने जीवन और पिता से प्राप्त हुआ, जो आज भी मध्य भारत के ख्याति नामा बुजुर्ग कवि व साहित्यकार माने जाते हैं। पंडित चन्द्रिका प्रसाद मिश्र "चन्द्र" ने, जो आज कल ग्वालियर मे सरकारी पुस्तकालय के मंत्री पद पर कार्य कर रहे है, अपने पुत्र वीरेन्द्र प्रसाद मिश्र को आरम्भ से ही वह साहित्यिक व सांस्कृतिक वातावरण प्रदान किया जिसने उसके हृदय मे कला, संगीत व अभिनय के प्रति विशेष आकर्षण और अभिरुचि उत्पन्न कर दी। इस प्रकार दो

वर्ष की आयु मे ही अपनी तोतली वाणी मे देश भक्ति के गाने गाने वाला तथा बाद मे अपनी पाठशाला के नाटकों मे अभिनय करने वाला बालक वीरेन्द्र यदि आज हिन्दी का विख्यात प्रगतिशील कवि बन गया है, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

वीरेन्द्र के हृदय मे कविता और देश भक्ति दोनों ने एक साथ जन्म लिया था। वीरेन्द्र जब ११, १२ वर्ष के थे तभी उनका परिवार ग्वालियर आ गया था, जो मरहठों और दक्षिणियों की आबादी अधिक होने की वजह से आरम्भ से ही हिन्दू सम्प्रदायिकता का गढ़ रहा है। नये खून और उग्र विचारों ने बालक वीरेन्द्र को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का सदस्य बना दिया। किन्तु कुछ दिनों में ही वीरेन्द्र को अन्ध राष्ट्रीयता के भीतर छिपी हुई उसकी विषाक्त नीति का ज्ञान हो गया और वे उसे छोड़ कर बाहर आ गये। फिर तो देश के स्वातंत्र्य आंदोलन के साथ उनका सम्पर्क और सहानुभूति बढ़ती ही गई, यहां तक कि उन्होंने अगस्त १९४२ की क्रांति मे सक्रिय भाग लेकर ग्वालियर के एक डाक खाने में आग लगाई। और यह बड़े महत्व की बात है कि यही वह दिन थे जब वीरेन्द्र के हृदय से कविता जन्मी और बाहर फूट निकली। उनकी प्रथम कविता का रचना काल अगस्त १९४२ है।

फिर तो वीरेन्द्र की काव्य प्रतिभा तथा राष्ट्रीय भावनाओं का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ। शिक्षा और आयु के बढ़ने के साथ ही उनके विचार तथा दृष्टिकोण स्पष्ट और पुष्ट होते गए, और जब उन्होंने बी० ए० पास किया तब उनके हृदय मे समाज के पूंजीगत वर्ग भेद के विरुद्ध तीव्र असन्तोष हिलोरें मारने लगा। वीरेन्द्र के सहज विद्रोही और क्रांतिकारी हृदय से समाज के शोषित—पीड़ित समुदायों के प्रति गहन सहानुभूति की सरिता बह निकली। स्वयं उनका जीवन भी कठोर अभाव और भौतिक संघर्षों का सामना कर रहा था और इस समय भी वे उन्हीं परिस्थितियों मे जीवन काट रहे हैं। देश के लाखों पढ़े लिखे नौजवानों की तरह वे भी बेकारी के शिकार हैं। ट्यूशन,

कविताओं के पारिश्रमिक व कवि सम्मेलनों के पुरस्कारों से ही वे गुजर कर रहे हैं। इसीलिए यद्यपि वे अभी तक कम्युनिस्ट पार्टी या अन्य किसी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं बने हैं, किन्तु फिर भी वे अपने साहित्य के द्वारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर सर्वहारा क्रांति और सुखी भविष्य के निर्माण की यथार्थता को निकट ला रहे हैं।

वीरेन्द्र ने जितने कम समय में और जितनी अधिक मात्रा में साहित्य सृजन किया है उससे उनकी अमोघ शक्ति और प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। वे अब तक कुल लगभग एक हजार गीत व कवितायें लिख चुके है। किन्तु इससे यह समझ बैठना भूल होगी कि वीरेन्द्र ने अपनी रचनाओं की संख्या ही बढ़ाई है। नहीं, उन्होंने तो काव्य कला की दृष्टि से उनके गुणों और विशेषताओं को भी उत्तरोत्तर बढ़ाया और संवारा है। उनके गीत व कवितायें पढ़ने व सुनने मे मन उनमें डूब जाता है और उनके संग संग बहता चलता है। यह उनकी रचनाओं की महान विशेषता है। वीरेन्द्र के पास इस समय उनके पांच कविता संग्रह तैयार रखे है:—गीतम, गागर, नयी लहर, प्रभाती और हर सिंगार। किन्तु सभी अप्रकाशित है। केवल पांडुलिपियों के रूप मे हैं। उनके साथ यह दुर्भाग्य अनोखा नहीं है। इस पूंजीवादी शोषक समाज मे वीरेन्द्र जैसे कर्मठ साहित्यकारों की प्रगति को रोकने के लिए पूंजी और शासन के देवता क्या क्या नहीं करते है। किन्तु फिर भी वीरेन्द्र कवि सम्मेलनों द्वारा दूर दूर तक और जन जन तक पहुँच चुके है। इसीलिये वे कवि सम्मेलनों को जन सम्पर्क का माध्यम तथा काव्य की कसौटी भी मानते हैं।

जीवन तथा साहित्य के प्रति वीरेन्द्र के विचार घोर मानववादी, यथार्थवादी और जीवनवादी है, जिन्हे उन्होंने एक शब्द मे 'प्रगतिवादी' बताया है। वे अपने ही शब्दों में—"हिन्दी गीतों को संगीत, सरल—स्वाभाविक व नूतन अभिव्यक्ति और नवीन छन्दों द्वारा अधिक से अधिक जनता के सुख दुख तक पहुँचाने मे संलग्न हैं," और यही उनके जीवन

की महत्वाकांक्षा है। वीरेन्द्र की रचनाओं में गेय तत्व प्रधान रहता है, और वे स्वयं उन्हें बड़ी मधुर ट्यूनों में बांधते हैं। वीरेन्द्र का कहना है कि—"आधुनिक हिन्दी कविता पर जीवन की जिन तीव्रतम अनुभूतियों का प्रभाव पड़ रहा है मैं अपने काव्य में उन्हें विविध कला रेखाओं द्वारा चित्रित कर उनमें सजीवता लाने के लिए प्रयत्नशील हूँ। वस्तु की स्वाभाविकता को अपनी तरह से कह देने में ही कला का सम्मान है। अभिव्यंजना को मैं समस्या नहीं बनाना चाहता। मेरा उद्देश्य है उसे प्राण तंतुओं से इस तरह जोड़ना कि वह प्रभाव पूर्ण ढंग से कविता और जगत दोनों को एक साथ तिलमिला दे। मैं केवल अनुभूति या केवल ज्ञान प्रदर्शन के पक्ष में नहीं हूं। भाषा की साहित्यिकता तो भावना में निवास करती है। शब्द-सौन्दर्य और शास्त्रीयता उसके अनुचर हो सकते है, स्वामी नहीं। साहित्य के सम्बन्ध में वैचारिकता, भावुकता और सिद्धान्त के दृष्टिकोण में स्पष्टवादी के रूप मे प्रगट कर देना ठीक समझता हूं। केवल कला की कसरत या प्रयोगात्मकता अधिक जीवित रहने वाली वस्तु नहीं है।"—वीरेन्द्र ने अपना यह वक्तव्य आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली केन्द्र से गत २४ अगस्त, १९५२ ई० को प्रसारित किया था।

यद्यपि वीरेन्द्र मिश्र अपने ऊपर किसी भी साहित्य का प्रभाव नहीं मानते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि मे युगप्राण निराला जी सबसे बड़े कवि हैं, क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति में सजीव कल्पना है और वे जीवन का स्वाभाविक चित्रण करते है। वीरेन्द्र ने पद्य के अतिरिक्त लेख, स्केच और गद्यगीत भी लिखे है। उनकी रचनायें नियमित रूप से देश के प्रायः सभी प्रमुख मासिक, साप्ताहिक व दैनिक पत्रों मे प्रकाशित हुआ करती है।

वीरेन्द्र की समस्त रचनाओं में एक ओर तो उनके जीवन और विचारों की गहरी छाप है और दूसरी ओर उन्होंने वर्तमान युग का भी वास्तविक प्रतिबिम्ब चित्रित करने की सफल चेष्टा की है। अपने

अभावपूर्ण जीवन तथा समस्त मानवता के उज्ज्वल भविष्य के दृढ़ विश्वास को कवि ने इन छन्दों मे मूर्त रूप प्रदान किया है :—

सच है भौतिक जीवन का मुझको सुख न मिला
पर मन का महापुरुष कहता शाबाश मुझे
मैं आगत के प्रति सावधान विश्वस्त प्रगत
पीढ़ी-पीढ़ी के लिये गीत लिखने में रत
अनुभूति शताब्दी की अगले दस वर्षों में
मैं ग्रहण कर सकूं छोड़ सकूं कुमकुम अक्षत

और अपनी इसी मानव कल्याण की दृढ़ भावना की वजह से कवि ने सदैव ही जीवन के गीत गये है। वह कहता है :—

जिन्दगानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ
शौकिया लिखता नहीं हूँ, गीत है कर्तव्य मेरा
गीत है गत का कथानक, गीत है भवितव्य मेरा
जन्म से मुझको मिली है जो विरासत में निशानी
वह निशानी गा रहा हूं, मन नहीं बहला रहा हूँ

अथवा-कविता कहीं, कि है जीवन संगीत कहीं
मेरे कवि की दुनियां में वह गीत नहीं
मै जो कुछ भी गाता हूं वह जीवन है

अथवा-गीत लिखने के लिये जीवन मिला मुझको

वीरेन्द्र की रचनाओं में इस प्रकार के विचार भरे पड़े हैं। यह व्यक्ति का अहम् या प्रचार नहीं है, बल्कि युग के प्रति अपने कर्तव्य की सचेतनता है। तभी उसका उन कवियों से कोई मेल नहीं है जो मृत्यु या वासना के रूप में कला की उपासना करते है। वह स्पष्ट कहता है :—

जिन्दगी से दूर जाकर जो कला को है सजाता
मैं नहीं वह हूं, मुझे वह गीत लिखना है न आता

और तभी वह ऐसे लेखकों से कहता है :—

स्वप्न के मेले सजाते ही न रहना
सत्य के ईमान का भी ध्यान रखना
चांद से आंखें मिलाते ही न रहना,
धूल के शमशान का भी ध्यान रखना
गीत का मस्तक झुकाते ही न रहना,
गीत के सम्मान का भी ध्यान रखना
शब्द के आंसू बहाते ही न रहना,
गल रहे हिमवान का भी ध्यान रखना
युद्ध का खेमा सजाते ही न रहना,
एशिया की शान का भी ध्यान रखना

इस प्रकार कवि अपने समकालीन सभी कवियों को चेतावनी देने के बाद समाज के प्रति भी अपने कर्तव्य की पूर्ति करता है। समाज के युवक समुदाय से, जिस पर बुर्जुआ सभ्यता के प्रसार की वजह से सेक्स और वासना का नशा सा छा रहा है कवि कर्तव्य का बोध कराते हुये कहता है :—

होली में दीवाली जल कर राख हुई
मगर प्रणय में तुम ऐसे तल्लीन हो
जैसे जग में तुम हो या फिर प्यार है
जैसे प्रतिक्षण में यौवन रंगीन हो
आँखें खोलो देखो जलता बाग़ है
प्यार तुम्हारा संघर्षों का राग है
रूप, प्रणय, यौवन, आकर्षण में छवि है
लेकिन सबके पीछे युग की आग है

इस प्रकार कवि देश के अन्य कवियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों व कलाकारों और साधारण नागरिकों के दरवाजे खटखटाता घूमता है। वह घर-घर, जन-जन को कर्तव्य और जागरण का उद्‌बोधन करता फिरता है। चित्रकारों से वह कहता है :—

रात का परदा उठा कर झाँकता तारुण्य मेरा
तुम किरण पथ से लिए सिन्दूर प्राणों का
क्षितिज पर आ सकोगे क्या
तुम निशा की मांग में आरक्त बन
सोहाग रज चमका सकोगे क्या

और वह कवियों से पुनः कहता है :—

कैसे कवि हो सहृदयता तुम में नहीं अगर
है शपथ तुम्हें निज व्यक्ति गर्व को तो तोलो
वह कवि आखिर कितने दिन तक जी सकता है
जो दूर चला जाता संस्कृति के नगरों से

इस प्रकार वीरेन्द्र ने समस्त रोमान्सवादी तथा पुनरुत्थानवादी विचारकों की भर्त्सना करते हुए वर्तमान शोषणवादी और युद्धमय वातावरण की ओर संकेत करते हुए हर एक से प्रश्न किया है :—

दानवता युद्धों की होली खेलती
युग मानवता का होता संहार है
कहां रहोगे तुम मानवता मिटी अगर
सुन्दरता मानवता का शृंगार है

सुन्दरता की यह सुन्दरतम परिभाषा देते हुये कवि ने पुनः चेतावनी मिश्रित प्रश्न किया है, क्योंकि वह स्पष्ट देख रहा है कि विश्व की मेहनतकश जनता कितनी तेज़ी से आगे बढ़ी जा रही है। वह कहता है :—

कि जब तूफान आया है हिलोरों ने बुलाया है
तुम्हारी नाव क्या तट से बंधी रह जायगी ?

वास्तव मे वर्तमान युग के प्रत्येक जन-अन्दोलन की लहर हर स्त्री-पुरुष को बुलावा दे रही है। तभी कवि कहता है:—

लगा, आवाज़ लगा !
गफलत में सोने वाले शोषित इन्सानों को

लगा, आवाज़ लगा !!

कवि देखता है कि वर्तमान भारतीय समाज मे कितना शोषण और उत्पीड़न है, किन्तु जनता फिर भी गफलत मे जैसे सो रही है। तभी वह उसे आवाज़ लगाकर जगाने की आवश्यकता समझता है। जनता के दुख दैन्य को देखकर कवि का हृदय विद्रोही बन जाता है (मै विद्रोही बन चला क्योंकि मानवता का अपमान हुआ) और तब उसके सवेदनशील हृदय से समाज के निम्नतम वर्ग के शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ती है और वह "जय मजदूर किसान" के स्वरों मे गा उठता है :—

ग्राम देवता
धरती के भगवान
तुम्हारी जय हो !

कवि जानता है कि समाज का जीवन और भविष्य मजदूर और किसानों के कंधों पर ही टिका है। वह उनकी मेधावी शक्ति को भी जानता है। वह देख चुका है कि सोवियत रूस, पूर्वी यूरोप और चीन के मजदूर-किसान मानवता की काया पलट चुके हैं। उसी सुखी भविष्य को अपने देश में लाने की तैयारी और प्रतीक्षा मे वह भी है। एशिया के जन जागरण को देखकर वीरेन्द्र का हृदय गा उठता है :—

नया एशिया जागा है, अब नया एशिया जागा
पूरब का नभ लाल हुआ पश्चिम में भटका अंधियारा
नये सबेरे की अगवानी में दौड़ा अम्बर सारा

प्रकृति के इस सुन्दर रूपक को लेकर कवि ने मानव समाज मे आने वाले सबेरे की अगवानी की है। और कवि को इस भविष्य के प्रति इतना दृढ़ विश्वास है कि वह कहता है :—

मंजिल तक विश्वास स्वयं ले जायेगा
अब मुझको अपनी गति में भ्रम नहीं रहा

अथवा— दूर होती जा रही है कल्पना

इस प्रकार वीरेन्द्र मिश्र का प्रशस्त कवि न तो किसी भ्रम में है, न संशय में ही। वह अपना पथ पा गया है, और उसे अपनी गति पर विश्वास भी है। वह घोर आशावादी और जीवनवादी भी है। वीरेन्द्र ने जगह जगह अपनी रचनाओं में जीवन की परिभाषाएं दी हैं जिनमें ओज है, शक्ति है, आशा और विश्वास है। वह कहता है:—

मैंने सीखी यह परिभाषा जीवन से
जो उगता है उसको सूरज कहते हैं

अथवा— लू लपट से निकल कर जो आ रहा है
पूछ उससे अर्थ जीवन का, जगत का

जीवन की इतनी सरल और इतनी गूढ़ परिभाषा देना वीरेन्द्र के बलबूते का ही काम था। देखिये यौवन की परिभाषा कवि ने कितने मार्मिक और वास्तविक शब्दों में की है :—

आँधी की चाल चलती है जवानी
मीठा सा राग है यह
लेकिन हुंकार भी है, जीवन का सार भी है
सम्हलो तुम आग है यह
जब यह आवाज़ देती है किसी को
अपना अन्दाज़ देती है किसी को
उषा हँसती क्षितिज पर
परिवर्तन साथ चलता
अवगुंठन दूर इससे, जड़ता मजबूर इससे
आकर्षण साथ चलता
सपनों में चेतना की गंध है यह
जीवन में जागरण सौगन्ध है यह

कवि की सूझ-बूझ और अनुभव बड़े पैने और सच्चे हैं। स्वप्नों के सम्बन्ध में वह कहता है :—

सपना दुनियाँ को ठगता है, सब माल चुरा कर भगता है

अथवा— मेरा नीड़ किसी की अखियाँ

टूटी नींद की उड़ जाऊँगा, नये निमंत्रण पर आऊँगा

आंसू की परिभाषा भी कवि ने स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद की भाँति कितने मार्मिक शब्दों में दी है:—

मेरा नीड़ किसी की अखियाँ

फूटा दर्द कि बह जाऊँगा, मन की गाथा कह जाऊँगा।

सच्चे मित्र के सम्बन्ध में कवि सरलतम शब्दों में गूढ़तम बात कहता है:—

यों तो जीवन में मित्र बहुत बन जाते हैं

जो मंजिल तक दें साथ, वही सच्चे साथी

अथवा— जो भूल जाय वह क्या अपना,

जो याद करे वह साथी है

कवि की इन पंक्तियों में हम जीवन के कटु सत्य पाते हैं। वीरेन्द्र की अनुभूति जितनी ही गहरी है, उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही सरल, वास्तविक और कलात्मक है। इसीलिए कवि ने प्रकृति के बड़े ही हृदय-ग्राही और मार्मिक दृश्य अपने काव्य के स्थल-स्थल पर उपस्थित किये है। मालूम देता है कवि को जितनी प्रेरणा जीवन और समाज से मिलती है उतनी ही प्रकृति से भी। तभी वह उसे इतने सुन्दर रूपों मे चित्रित कर सका है। वह कहता है:—

डूबती है साँझ धीरे से झरोखे में क्षितिज के

अथवा— चादर फेंक कर बाला उषा जागी

रजनी तम लिये न जाने किधर भागी

अथवा— चढ़ती धूप थी आकाश के गिरिपर

उसने भी डाला नहीं कहीं लंगर

अथवा— महक सी गई दूधिया रात

अथवा—चला जब आवारा सा चपल पवन का झोंका

इस प्रकार वीरेन्द्र गागर में सागर भरने की चेष्टा करते हुए एक एक शब्द या पंक्तियों में प्रकृति व जीवन के विराट चित्र उपस्थित कर देते हैं। उदाहरण के लिए—पारस-स्वर, सर्पीली-बदली, क्वांरी-साध, विधुर सपने, वासन्ती पवन, सावनी रातें, मरघटी सांझ आदि। बरसात के चित्र कवि ने अत्यन्त सरस शब्दों मे रंगे हैं। दो उदाहरण देखिये—

गया आसाढ़ किया सावन ने जादू टोना
सरस हो गया जली धरती का कोना कोना

अथवा— ज्यों अर्ध रात्रि में बन्धन मुक्त जवानी हो
इसलिए उफनती इतराती चलती जमुना
कोई सागर अपनी बाहें फैलाये तो
सावन आया रे, आज कि कोई गाय तो

इस प्रकार वीरेन्द्र मिश्र का तरल, भावुक और विद्रोही मन प्रकृति के सुरम्य स्थलों पर चरण रखता हुआ पुनः अपने युग धर्म की याद कर समाज के वैषम्य और उत्पीड़न की जड़ें उखाड़ने के लिए लौट आता है। तब समाज में व्याप्त बेकारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार और तबाही से, जिनका वह स्वयं शिकार है, उसका मन विद्रोह कर उठता है, और समाज की यथार्थता का चित्रण करते हुए वह कहता है:—

नील गगन सा बेकारी का साया है
कुहू निशा सी महँगाई की छाया है
शासन का दीपक मरघट सा जलता है
रिश्वत का रथ राज मार्ग पर चलता है
खून-खराबी महानाश का ताण्डव है
कौरव जैसा राज कि जनता पान्डव है
लुटती है सभ्यता कि अब मजदूर किसानों को
लगा, आवाज़ लगा !

अथवा—मुक्त हो गये राज हँस हैं उड़ते हैं सपनों के नभ में
आजादी की मध्यनिशा में जीवन उत्सव मना रहे हैं

डोल रहे हैं नीड़हीन खग पतझर के उजड़े वृक्षों पर
कोटि कोटि हैं ध्वस्त-त्रस्त है, अपना दुखड़ा सुना रहे हैं
कोटि खगों के हृदय नीड़ में कौन गरुड़ धरता अंगारे
बोझिल होती जाती प्रतिपल स्वर्णिम अन्यायी की डाली
झोपड़ियों में आग लग रही, महलों में मन रही दिवाली

इस प्रकार, देश को राजनीतिक आजादी मिलने के बाद देश की राष्ट्रवादी नेता मंडली ने देशी-विदेशी इजारेदारों के साथ सांठ गांठ कर नौकरशाही-दमन-शोषण का जो राज देश में कायम किया और जनता उसके नीचे जिस प्रकार दम तोड़ रही है, उसका चित्रण करने में कवि ने अपनी समस्त प्रतिभा लगा दी है, और ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस अन्यायी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए कृत संकल्प है। वह राष्ट्रीय नेताओं से साफ कहता है:—

मिल गये हो तुम महल के वासियों से
अब हमारे पास क्यों आने लगे?

इस प्रकार वीरेन्द्र का कवि इन नेताओं के वास्तविक स्वरूप को अच्छी तरह से पहचान गया है। वह निर्भीक होकर कहता है:—

लोग भ्रम की नींद सो कर जग गये हैं
और अब सब कुछ समझने लग गये हैं
स्वर्ण-पुरुषों के चरण धोकर तुम्हीं तो
लौह पुरुषी हाथ दिखलाने लगे

वीरेन्द्र के कवि को इस नेता मंडली के पतनशील भविष्य का भी निश्चय है। तभी तो वह कहता है.—

तुम कयामत के निकट अब आ गये हो
तुम बदल सकते नहीं, सठिया गये हो

इसलिए वह अपने कवि से कहता है:—

करना है निर्माण अगर कुछ सांचे में
प्रेमचन्द सा दिल भी ला इस ढाँचे में

तुलसी और निराला के संघर्ष तरानों को
लगा, आवाज़ लगा !

और तब वह देश की सर्वहारा जनता से कहता है:—

मुक्त करो तुम हमें हमारे अगणित मानव प्राण
नया समाज बनाओ, नया बनाओ हिन्दुस्तान

क्योंकि वीरेन्द्र का कवि देख रहा है कि भारत के पड़ोसी एशिया के अन्य राष्ट्र प्रगति और निर्माण के पथ पर बढ़ रहे हैं। फिर भला हम पीछे क्यों रहें ? वह पड़ोसी राष्ट्रों की प्रगति से स्फूर्ति और प्रेरणा ग्रहण करता है, क्योंकि वह प्रगति और मानवता को प्यार करता है। वह कहता है:—

सुलगती क्रांति द्वीपों में, महाद्वीपादि देशों में
मलाया, स्याम, वीयटनाम, बर्मा के प्रदेशों में
हिमालय का पड़ोसी चीन भी तो जगमगाया है

अथवा— इधर अफ्रीका, उधर चीन के मन्दिर में
दूर मलाया, वियटनाम के घर घर में
जीवन के भग्नावशेष की आहों में
गत, आगत या वर्तमान की राहों में
सारी जनता की सुख-दुख की झाँकी है

इस प्रकार वीरेन्द्र का कवि देश की सीमाओं को भी लाँघ कर विश्ववादी और मानवतावादी बनने का प्रयत्न करता है। वह सीमाओं में नहीं बँधा है, अपने में सीमित नहीं है। वह संवेदनशील है और युग की पीड़ा को चित्रित करने में जुटा है। उसकी अन्तर्दृष्टि का विस्तार बड़ा व्यापक है। वह राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की हत्या पर अपने शोकोद्‌गार प्रगट करता है, नाविक विद्रोह के तराने गाता है, बंगाल के अकाल की करुण कथा चित्रित करता है और तृतीय विश्व युद्ध के सम्भावित खतरे के प्रति देश को आगाह करता है और कहता है—

महानाश का शंख बजेगा, युद्ध छिड़ेगा, रक्त बहेगा

शोणित के सागर में तुम को नहीं मिलेगा कहीं किनारा

इसलिए वीरेन्द मिश्र शांति कला और संस्कृति सभी की रक्षा तथा सुनहरे भविष्य के निर्माण के लिए संघर्षरत है और कहते हैं:—

संघर्षों के उद्गम से मैं आरम्भ हुआ
आदर्शों के संगम तक मुझ को जाना है

वीरेन्द्र की एक सबसे बड़ी खूबी यह भी है कि वे जिसके लिये लिखते है उसकी ही भाषा मे लिखते है। उनके काव्य की भाषा सरस और सरल है। भावों के अनुसार वे शब्द गढ़ भी लेते है और इस प्रकार वे भाव-शब्दो के शिल्पी होने का परिचय देते है। उनका नवनीत हृदय कोमल भी है और क्रांतिकारी भी। उनके जीवन की एक अन्य महत्व-पूर्ण घटना का उल्लेख भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा, और वह यह कि वीरेन्द्र ने सच्चे प्रणय की परम्परा को निभाते हुए एक विजातीय अर्थात् महाराष्ट्रियन युवती से विवाह किया है, परिवार से नाता तोड़ कर, समाज से लोहा लेकर और अपनी जान खतरे मे डाल कर, क्योंकि ग्वालियर के धर्मान्ध मरहठे उनके खून के प्यासे थे। इस प्रकार वीरेन्द्र कथनी और करनी मे भी एक है और इस माने मे वे भाग्यवान भी हैं, क्योंकि पूँजीवादी समाज मे प्रणय सम्बन्धों की पूर्णता और सफलता बिरलों को ही प्राप्त होती है।

वीरेन्द्र मिश्र मे भविष्य-रचना की पर्याप्त क्षमता है।

६

शंकर शैलेन्द्र
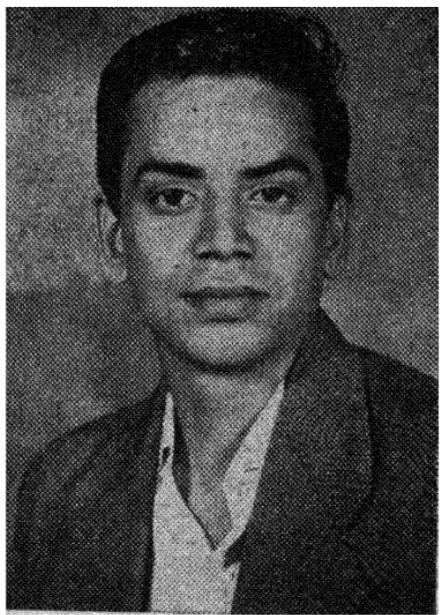
"मैं साहित्य तथा कविता को जिन्दगी के स्वस्थ विकास के लिए एक साधन मानता हूँ।......"

शंकर शैलेन्द्र,
४८, छपरा बिल्डिंग,
बालामियाँ लेन,
माहिम,
बम्बई—१६

★

जो वर्तमान युग-स्वर-साधक आज हिन्दी कविता की नयी इमारत खड़ी करने मे जुटे हैं, शंकर शैलेन्द्र भी उनमें से एक हैं। पेशे से फिल्म गीतकार के रूप में ख्याति प्राप्त करने वाले, किन्तु दिल से विद्रोह और क्रांति के गायक शंकर शैलेन्द्र की रचनाओं में निर्माण और विध्वन्स, दोनों के राग हैं। उनमें संवेदना भी है और आक्रोश भी; किन्तु लक्ष्य एक है—साहित्य को जन-जन की मुक्ति का अस्त्र बनाना।

निजी जीवन मे शंकर दास राव (कवि का असली नाम यही है), किन्तु साहित्य मे शंकर शैलेन्द्र तथा फिल्म-जगत मे केवल शैलेन्द्र का जन्म लगभग तीस वर्ष पूर्व पंजाब प्रांत (वर्तमान पाकिस्तान) के रावलपिन्डी शहर मे एक बहुत मामूली परिवार मे हुआ था। एक दलित वर्गीय निर्धन शूद्र घराने मे उत्पन्न इस कर्मठ कवि के जीवन का अब तक का इतिहास बड़ा रोचक है। शैलेन्द्र के पिता स्वर्गीय श्री केशरी लाल रावलपिन्डी के ब्रिटिश मिलिटरी हास्पिटल मे एक मामूली फौजी-क्लर्क थे। एक प्रकार से नौकरी ही इनके परिवार का पैतृक व्यवसाय रहा है। वैसे इनके पूर्वज, जो बिहार प्रांत के निवासी थे, मामूली खेतिहर तथा मजदूर थे। शैलेन्द्र जब छः साल के ही थे, इनके पिता बीमार पड़ गए। बीमारी की हालत मे ही उन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। मजबूरन वे अपने परिवार को लेकर रावलपिन्डी से मथुरा (उत्तर प्रदेश) चले आए और अपने बड़े भाई के साथ, जो एक रेलवे कर्मचारी थे, रहने लगे। मथुरा मे शैलेन्द्र की नियमित शिक्षा आरम्भ हुई। वे वहाँ के सरकारी हाई स्कूल मे भरती हुए और बिना किसी रुकावट के हाई

स्कूल की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। पढ़ाई का खर्च सरकारी वजीफे से चलता था जो इन्हें इनकी तीव्र बुद्धि और प्रतिभा की वजह से नियमित रूप से मिलता रहा।

परिवार की आर्थिक समस्या इतनी जटिल थी कि हाई स्कूल पास करने के बाद ही शैलेन्द्र को मथुरा के रेलवे वर्कशाप में पैतालिस रुपये महीने पर नौकरी करनी पड़ी। तभी उनका ध्यान इन्जीनियरिंग की ओर गया और एक कुशल इंजीनियर बनने की अभिलाषा जागृत हुई। तकदीर ने भी साथ दिया और वे मथुरा से बम्बई पहुँच गए। बम्बई के रेलवे वर्कशाप मे वे अप्रेन्टिस हो गए और इंजीनियरिंग का डिप्लोमा प्राप्त किया।

बम्बई पहुँच कर शैलेन्द्र की जिन्दगी के रास्ते मे नये मोड़ आने लगे—आर्थिक एवं बौद्धिक, दोनों क्षेत्रों मे। एक ओर तो वे रेलवे कारखाने मे वैल्डिग स्पेशलिस्ट हो गए और उनकी तनख्वाह डेढ़ सौ रुपया महीना हो गई और दूसरी ओर रेलवे मजदूरों, कुलियों आदि के साथ काम करते एवं बम्बई के वैभव तथा शोषण के घोर वैषम्य पूर्ण जीवन के संघर्षो को झेलते हुए उनका जागृत मानस अँगड़ाइयाँ लेने लगा। उन्होंने सन १९४२ की क्रांति मे भाग लिया। फलतः जेल में ठूँस दिए गए। छूट कर आने पर अपने दिल की आग को राजनीतिक-सैद्धान्तिक शिक्षा द्वारा अपने वश मे कर कला तथा साहित्य के माध्यम से प्रगट करना शुरू किया। शैलेन्द्र ने भारतीय जन नाट्य संघ के आंदोलन मे सक्रिय भाग लिया और अपनी ओजस्वी रचनाओं द्वारा उसमे नयी स्फूर्ति भर दी। 'इप्टा' मे गाये जाने वाले इनके गीत बम्बई की जनता पर छा गये।

उन्हीं दिनों शैलेन्द्र की जिन्दगी पर मुसीबत के बादल घिरने लगे। पत्नी की लम्बी बीमारी ने उनकी कमर तोड़ दी थी। विवाह के बाद पत्नी के घर आने के माने हुए आर्थिक-भार की वृद्धि। फलतः शैलेन्द्र को फिल्म-क्षेत्र की शरण लेनी पड़ी। उन्होंने "बरसात" फिल्म के दो

गाने—'पतली कमर है, तिरछी नजर है' और 'हममे मिले तुम सजन, तुम से मिले हम, बरसात में'—लिख कर अपनी प्रतिभा का सफल परिचय दिया। इसके बाद तो उत्तरोत्तर फिल्म क्षेत्र मे इनकी ख्याति और प्रतिष्ठा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती गई। 'घर आया मेरा परदेशी'...'रोऊँ मै सागर के किनारे'...'ऐ मेरे दिल कहीं और चल'... 'आजा, अब तो आजा, मेरी किस्मत के खरीदार'...'मेरे राजा की आएगी बारात'...'देखो जी मेरा जिया चुराए लिए जाय' आदि लोक प्रिय फिल्म-गीतों को लिख कर न केवल एक महान व कुशल फिल्म-गीतकार के रूप मे शंकर शैलेन्द्र ने अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की, वरन् इन गीतों से इन्हे एक राष्ट्रीय ख्याति भी मिली। आज कल वे रेलवे वर्कशाप की नौकरी छोड़ कर अपना पूरा समय सिनेमा लेखक के रूप मे लगा रहे हैं और वही उनकी आमदनी का अब एक मात्र मुख्य साधन है। अब आर्थिक रूप से पहले से अधिक सम्पन्न वे अपने दो पुत्र तथा दो पुत्रियों के साथ बम्बई मे ही सन्तुष्ट पारिवारिक जीवन व्यतीत कर रहे है। उनके परिवार में पत्नी और चार बच्चों के अतिरिक्त चार भाई और दो बहनें भी है।

शंकर शैलेन्द्र को कविता या गाने लिखने का शौक किशोरावस्था मे ही, जब कि वे स्कूल मे पढ़ते थे, शुरू हो गया था। उन्होंने सबसे पहली तुक बन्दी सन् १६३८ मे की थी और सबसे पहली बार उनकी कविता सन् १६४१ मे आगरा से प्रकाशित होने वाले "साधना" नामक पत्र मे "शचीपति" के नाम से प्रकाशित हुई थी। (शंकर शैलेन्द्र का प्रथम उपनाम यही था।) तब से अब तक शंकर शैलेन्द्र ने पर्याप्त मात्रा मे साहित्य-सृजन किया है। किन्तु अभी उनका कोई भी कविता संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। 'नया साहित्य' व 'हंस' के बाद अब 'नया पथ' व 'जन युग' आदि प्रगतिशील पत्रों में उनकी रचनाएँ पढ़ने को मिला करती है।

शंकर शैलेन्द्र ने अपनी विचार धारा व जीवन के प्रति दृष्टिकोण को

केवल एक शब्द में व्यक्त किया है, और वह है—"साम्यवादी।" किन्तु किसी राजनीतिक दल से उनका सम्बन्ध है या नहीं, इस प्रश्न पर मौन-धारण कर लिया है। अपनी अभिरुचि को वे "प्रगतिवादी" बतलाते हैं। महाकवि निराला को वे सबसे अच्छा कवि मानते है, किन्तु क्यों, यह बताया नहीं है। वे अपने ऊपर बंगला और अंग्रेजी साहित्य का विशेष प्रभाव मानते है। किन्तु बँगला अथवा अंग्रेजी के किस साहित्य-कार की रचनाएँ उन्हें प्रभावित कर पाई हैं, यह कुछ पता नहीं।

उन्होंने लिखा है—"मैं साहित्य तथा कविता को जिन्दगी के स्वस्थ विकास के लिए एक साधन मानता हूं।" उनके इस कथन की सत्यता उनकी रचनाओं के अध्ययन से पूर्ण सिद्ध होती है। शंकर शैलेन्द्र की विचारधारा पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव है, जो उनकी समस्त रच-नाओं मे व्याप्त है। वे एक क्रांतिकारी और विद्रोही कवि हैं। यंत्र और पूंजी की दासता मे जकड़े हुए शोषित-दलित जन-समाज के प्रति उनके हृदय मे सहज-स्वाभाविक गहन सहानुभूति और संवेदना है जो उन्हें एक साधनहीन निम्न वर्गीय परिवार में जन्म लेने तथा स्वयं जीवन के कठोर संघर्षों और संकटों को झेलने से प्राप्त हुई है। इसीलिए उनमें गहरा आक्रोश और घृणा भी है—यंत्र और पूंजी के स्वामियों के प्रति जो समाज के भाग्य विधाता बन कर उसके रक्त को चूस रहे हैं। इन्हीं जीवन-विरोधी परिस्थितियों ने उन्हें लड़ने के लिए विवश किया। तभी वे साहित्य रूपी अस्त्र ले कर उधर अग्रसर हुए।

शंकर शैलेन्द्र के कवि-विकास की अभी तक दो स्पष्ट व मुख्य मंजिलें दिखाई देती है। विकास-पथ के आरम्भिक चरण में कवि किसी मायावी रूप-जाल के प्रभाव में उलझा हुआ था। वह जीवन तथा सौन्दर्य के रहस्य और कमनीयता को जानने की चेष्टा मे रत था। नारी और उसके रूप के प्रति उसके हृदय मे यौवन-सुलभ स्वाभाविक आकर्षण था, जिसे वह भांति-भांति से अपने गीतों और कविताओं में प्रगट किया करता था, जिसमे पूरी ईमानदारी और माननीयता थी। तब उसकी

प्रेरणा और अनुभूति को जागृत करने वाला स्रोत कवि का 'प्रिय' था, जो जन्म-जन्म की उसकी साधें पूरी कर रहा था—

जिस दिन तुमने बाहों में भर
तन का ताप मिटाया
प्राण कर दिये पुण्य
सफल कर दी मिट्टी की काया
उस दिन ही प्रिय जनम-जनम की
साध हो गई पूरी

किन्तु फिर भी उसका वह 'प्रिय' उसके लिए एक पहेली बना हुआ था, जिसे वह सुलझा न पाता था। वह उससे कहता था—

तुम काया मैं कुरूप छाया, हैं पास पास पर दूर सदा
छाया-काया होंगी न एक, है ऐसा कुछ ये भाग्य बदा
तुम पास बुलाओ दूर करो, तुम दूर करो लो बुला पास
बस इसी तरह निस्सीम शून्य में डूब रहीं हैं शेष श्वास
समझाओ तो अद्भुत रहस्य आकर्षण और विकर्षण का

इस प्रकार सौन्दर्य का रूप जाल उसे अपने प्रभाव में उलझा कर ठगता रहा। कवि भ्रमित अवस्था में अपने लक्ष्य को हस्तगत करने के प्रयत्न करता। उसे स्वर तो मिल गये थे किन्तु उसका जीवन-गान अभी अधूरा ही था—

डूबा-डूबा सा अन्तर है
ये बिखरी सी भाव-लहर है
अस्फुट से स्वर तो हैं लेकिन
मेरा जीवन-गान कहाँ है ?

और अन्त में जीवन की कठोर यथार्थताओं के प्रहार से कवि के मन की रंगीनियों का वह शीशमहल जब चकनाचूर हो गया तब कवि प्रायश्चित्त के स्वरों में स्वयं अपने से ही प्रश्न करने लगा—

जिसने छूकर मन का सितार

कर झंकृत अनुपम प्रीत-गीत
खुद तोड़ दिया हर एक तार
मैंने उससे क्यों प्यार किया ?

किन्तु इस अवस्था में पहुँच कर भी कवि ने अपने हृदय में निराशा या असहायता के दुर्बल स्वरों को जमने नहीं दिया, बल्कि उसकी जीवन-दिशा ही पूर्णतया बदल गई। रूप, मोह और विभ्रम का परदा हट गया। उसे अपने सामने लम्बा, संघर्षपूर्ण भविष्य दिखाई देने लगा। उसने अपने प्रिय से कहा—

मुझको जीवन के शत संघर्षों में
रत रह कर लड़ना है
तुमको भविष्य की क्या चिन्ता
केवल अतीत ही पढ़ना है
बीता दुख दुहराना होगा
तुमको अपनी नादानी पर
जीवन भर पछताना होगा

बस, यहीं पर शंकर शैलेन्द्र के कवि विकास की दूसरी मंज़िल आ जाती है। इस मंजिल मे पहुँच कर कवि रूप, मोह, सौन्दर्य, प्रेम—सभी प्रकार के बन्धनों को तोड़ कर कर्त्तव्य-डगर पर आ निकलता है, एक योद्धा की भांति। उसकी दृष्टि निज और व्यक्ति से हट कर समाज और समष्टि की ओर बरबस मुड़ जाता है। जीवन का दुःख-दैन्य, हाहाकार, उत्पीड़न उसे सचेत करता है, आत्म बोध उत्पन्न करता है। कर्त्तव्य, संवेदना और क्रोध की अजस्रधारा फूट पड़ती है। यद्यपि घरबार, संगी-साथी, प्रियजन, सभी लोग उसके पीछे हैं, और उसके दिल में भी अपने सँजोये हुए अरमान हैं, किन्तु फिर भी कर्त्तव्य की पुकार उसे झकझोर कर कहती है—

किन्तु फिर कर्त्तव्य कहता जोर से झकझोर
तन को और मन को

चल, चला चल,

मोह है कुछ और, लेकिन जिन्दगी का प्यार है कुछ और
इन रुपहली साजिशों में कर्मठों का मन नहीं ठगता

और तब कवि को ज्ञात होता है कि अपनी असफलताओं पर रोना या पछताना कायरों का काम है। कर्मठ व्यक्ति तो संघर्ष करता है, वह हाथ पर हाथ धर कर नही बैठता, बल्कि मौत से भी लड़ता है। इसीलिए—

मैं अपने दुःख के गीत नहीं गाऊँगा
रो-धोकर ही मन कब तक बहलाऊँगा ?

कहने के बाद नया सचेतन कवि कह उठता है—

आज मुझको मौत से भी डर नहीं लगता

प्रेम और रूप के जाल मे उलझा हुआ कवि इस स्थिति को कैसे पहुँचा ? वह कौन सी शक्ति है जो उसे संकट और असफलता में मुस्कराना तथा मौत से लड़ना सिखाती है ? कवि इस रहस्य को भी हर एक को बता देता है। वह कहता है—

जन-जीवन को जलते देखा है मैंने
अन्यायों को फलते देखा है मैंने
चींटों सी पिसती देखी है मानवता
पी रक्त पनपते देखी है दानवता

बस, यही वह एक मात्र रहस्य है जिसने कवि को शक्ति दी है और उसे विद्रोही बनाया है। इसीलिए वह प्रण करता है—

जब तक जीवन न मुक्त होगा क्रन्दन से
जब तक धरती न मुक्त होगी बन्धन से
× × ×
मैं समरांगण में रक्त-स्वेद से लथपथ
बढ़ता जाऊँगा, लड़ता ही जाऊँगा !

और तब कवि सभ्यता तथा जीवन-विकास के विभिन्न युगों में मानव

की भौतिक प्रगति का इतिहास पढ़ने बैठता है। वह देखता है कि किस प्रकार युगों-युगों से मानव के श्रम-पसीने से निर्मित सम्पत्ति के अधिकारी बन कर समाज के स्वामी कहलाने वाले तथाकथित राजे-महराजे, पूँजीपति, जमींदार आदि शोषण, दमन, अनाचार और अत्याचार के बल पर जनता का रक्त चूसते आए हैं। किस प्रकार सामन्तवाद के बाद पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा फासिस्तवाद का क्रमिक विकास होता है; महायुद्ध होते है; तबाही, बरबादी, मौत छा जाती है; और लाशों के अम्बारों पर खड़े हो कर जनता के शत्रु और शोषक अट्टहास करते हैं। इस समस्त भौतिकवादी इतिहास दर्शन को शंकर शैलेन्द्र ने अपनी "इतिहास" शीर्षक लम्बी कविता में चित्रित करने के बाद स्पष्ट लिखा है कि—

> निर्धन के लाल लहू से
> लिक्खा कठोर घटना क्रम
> यों ही आए, जाएगा
> जब तक पीड़ित धरती से
> पूँजीवादी शासन का
> नत-निर्बल के शोषण का
> ये दाग न धुल जाएगा

और इसी दाग को धोने के लिए ही शंकर शैलेन्द्र प्रयत्नरत है। वे साहित्य को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन मान कर प्रयुक्त कर रहे हैं। वे उन कवियों में से है जो सोद्देश्य साहित्य ही सार्थक साहित्य मानते हैं; बौद्धिक चेतना ही जिनमें सर्वोपरि रहती है। शंकर शैलेन्द्र की रचनाओं में हमें भारत के औद्योगिक शहरों में रहने वाले दीन मजदूरों के वास्तविक चित्र देखने को मिलते है। उनके छन्दों में मजदूर का स्वर सुनाई पड़ता है, वह मजदूर जिसने सभ्यता, संस्कृति और मानवता की रचना की है, जिसने धरती को स्वर्ग बनाया है। शंकर शैलेन्द्र एक मजदूर कवि है। उन्होंने स्वयं बम्बई के मजदूरों के

बीच रह कर उनके जीवन और समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन और अनुभव किया है। इसीलिए उनकी रचनाओं में अन्य मध्य-वर्गीय प्रगतिशील कवियों की भाँति कोरी सहानुभूति का ही चित्रण नहीं मिलता, बल्कि उसमें मजदूर के दिल से निकली हुई हूक और टीस सुनाई देती है। "नेताओं को न्योता" शीर्षक कविता मे बम्बई की विला पार्ला, कुर्ला, थाना, सिऊ और अँधेरी आदि मजदूर बस्तियों मे बसने वाले हजारों-लाखों शोषित-पीड़ित मजदूरों के जीवन की वास्तविक झाँकी देखने को मिलती है। उसमे मजदूर का सहज-स्वाभाविक भोलापन, दीनता और ज्ञान साकार रूप मे दिखाई देता है। उस मजदूर का जो—

अनिभज्ञ बाँह के बल से
अनजान संगठन बल से
ये मूक मूढ़ नत निर्धन
दुनियाँ के बाज़ारों में
कौड़ी-कौड़ी को बिकते

किन्तु जो अब जाग चुका है और जो विश्व मे नये इतिहास की रचना कर रहा है। उस जागरूक, संगठित मजदूर की वाणी मे शंकर शैलेन्द्र अपने देश के गद्दार राष्ट्रीय नेताओं से, जिन्हें उसने ही शासक की गद्दी पर बैठाया है और जो अब सत्ता के मद मे बौरा कर उसकी ही गर्दन काट रहे है, अपनी दुर्दशा को देखने का न्योता देते हुए कहते है—

लीडर जी परनाम तुम्हें हम मजदूरों का
हो न्योता स्वीकार तुम्हें हम मज़दूरों का
एक बार इन गंदी गलियों में भी आओ
घूमे दिल्ली-शिमला, घूम यहाँ भी जाओ

किन्तु यह निमंत्रण देने के साथ ही वह इन पूँजी-पोषक नेताओं को चेतावनी भी देते है और कहते हैं—

हाँ, इस बार उतर गाड़ी से बैठ कार पर
चले न जाना छोड़ हमें बिड़ला जी के घर

चलना साथ हमारे वरली की चालों में
या धारवि के उन गंदे सड़ते नालों में
जहाँ हमारी, उन मजदूरों की बस्ती है
जिनके बल पर तुम नेता हो, यह हस्ती है

इन पंक्तियों में मजदूर का आत्म विश्वास, शक्ति-बल, और सजग-एकता के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं। इन पंक्तियों के पीछे बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, कानपुर आदि शहरों के संगठित मजदूरों के क्रांतिकारी आंदोलन की लम्बी परम्परा का इतिहास छिपा दिखाई देता है। तभी तो शंकर शैलेन्द्र की रचनाओं में यही क्रांतिकारी मजदूर बरबस ललकार उठता है—

हम मौत के जबड़े तोड़ेंगे, एका हथियार हमारा है!
हर जोर-जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है!

शंकर शैलेन्द्र भली-भांति जानते हैं कि संगठन और एकता ही मजदूर की सबसे बड़ी शक्ति है; और यही शक्ति ही उसकी जीत का आधार है। रूस-चीन आदि देशों के मजदूरों के आंदोलनों का इतिहास हमें यही सबक सिखाता है। तभी तो उन्होंने लिखा है—

तू औ' मैं, हम जैसे अनगिन, इक बार अगर मिल जाएँ
तोपों के मुँह फिर जायँ, जुल्म के राज सिंहासन हिल जाएँ
ओ जीते जी जलने वाले, अन्दर भी आग जला!

और अगर मजदूर-किसानों आदि की यह महान एकता स्थापित हो जाए तो शंकर शैलेन्द्र को पूर्ण विश्वास है कि धरती से शोषण-दोहन के इतिहास का अंत हो जाएगा। उन्होंने लिखा है—

तै है जय मजूर की, किसान की
देश की, जहान की, अवाम की
खून से रंगे हुए निशान की
लिख गई है मार्क्स की कलम

यही दृढ़ विश्वास ही उन्हें निरन्तर आगे बढ़ा रहा है और नित

नयी स्फूर्ति दे रहा है।

१५ अगस्त, सन् १९४७ मे देश के विभाजन के बाद जो परिवर्तन हुए तथा धीरे-धीरे उत्तरोत्तर देश के राष्ट्रीय नेताओं ने देश-विदेश के पूँजीपतियों से साठ-गाँठ कर देश में मँहगाई, बेकारी, अकाल, भूख; दमन, शोषण आदि के रूप में अपने रामराज्य और इस आजादी का जो नग्न रूप उपस्थित किया, उसका चित्रण शंकर शैलेन्द्र ने बड़े तीखे शब्दों मे अपनी तमाम रचनाओं में प्रस्तुत किया है। "आजादी के बाद," "पन्द्रह अगस्त के बाद," "नई-नई शादी है लेकिन..." आदि कविताएँ उनमें से प्रमुख है। इन सभी कविताओं मे शासकों के जन-विरोधी तथा फासिस्त रूप और देश की तबाही के आक्रोशपूर्ण, घृणामय यथार्थ चित्र मिलते है। देश के विभाजन पर कवि ने लिखा था—

खुली हमारी आँखें जब यह ज़मीं बिक चुकी
चिर कटार से जब स्वदेश की देह बट चुकी
अपना भाई सुहृद पड़ोसी गैर हो गया—
खोद हमारा आँगन दुश्मन बैर बो गया!

इसी प्रकार वर्तमान भारत की वेदना पूर्ण विडम्बनामयी झाँकी कवि की इन पंक्तियों मे सत्य रूप धारण कर हमारे सामने प्रगट हो उठती है—

गवरमिन्ट बटुवा दिखलाती
कहती कौड़ी पास नहीं है
चाहो तो गोली खिलवा दें
गोली अभी खलास नहीं है

अथवा—भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की
देश-भक्ति के लिए आज भी सज़ा मिलेगी फाँसी की

किसी देश की आजादी का इससे अधिक दुःखमय और दुर्भाग्यपूर्ण चित्र और क्या हो सकता है? कितनी सच्चाई है इन पंक्तियों में? कौन देशवासी इस स्थिति से इंकार कर सकता है? किन्तु कवि भली भाँति

जानता है कि आज सारे देश मे जो उद्यत असंतोष, भूख और बेकारी व्याप्त है एक दिन वही इस दुरावस्था के परिवर्तन का निश्चित कारण बनेगी। कवि कहता है—

लेकिन भैया भूख आग है
भड़क उठे तो खा जाती है
नहीं गोलियों से बुझती ये
गुपचुप जेल नहीं जाती है

इसीलिए आज जनता के दिल मे जो आग सुलग रही है वह एक दिन भड़क कर क्रांति का रूप ले लेगी और इस जर्जर व्यवस्था को खाक कर नया भविष्य बनाएगी। इसी विश्वास मे कवि ने लिखा है—

अन्दर की यह आग एक दिन भड़केगी ही !
नयी गुलामी की बेड़ी भी तड़केगी ही !

कवि ने अपने इस विश्वास को विभिन्न रूपों मे प्रकट किया है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे उसका यही विश्वास ही दुनियाँ के जंगखोरों को चुनौती देता है और विश्व-शांति तथा मानवता की रक्षा के लिए उसे कटिबद्ध बनाता है। "हैदराबाद और यू० एन० ओ०," "नया चीन", "जंगवाज", "चाचा से," "सदियों बाद" आदि कविताएँ शंकर शैलेन्द्र की युद्ध-विरोधी, विश्व-बन्धुत्वपूर्ण और शांति प्रेमी मनोवृत्ति की प्रतीक है।

शंकर शैलेन्द्र के कर्मठ, संघर्षालु, संवेदनशील, यथार्थवादी कवि का यही मुख्य परिचय है। जहां तक उनकी भाषा और शैली का सम्बन्ध है उसमे कहीं उलझाव और अटकाव नही है, बल्कि पैनापन और प्रभावोत्पादकता ही अधिक है। किन्तु उनकी रचनाओं मे एक दोष अवश्य कहीं-कहीं नजर आता है, और वह है—वामपक्षी संकुचितता की भावना जो दबे हुए रूप मे प्रगट हुई है। और कहीं-कहीं फिल्मी गीत लिखने का प्रभाव भी उनकी कलम मे दिखाई देता है।

शंकर शैलेन्द्र की महत्वाकांक्षा है कि वे एक अच्छे कवि बनें। वे

कवि सम्मेलनों को आवश्यक मानते हैं, क्योंकि उनके द्वारा कवि ज्यादा से ज्यादा लोगों के बीच पहुँच जाता है। उनके दिल में देश की वर्तमान आर्थिक दुर्व्यवस्था के प्रति गहरा असन्तोष है। वे देश भर में सुख और शांति चाहते हैं। तभी तो देश की जनता के लिए उनका एक ही संदेश है कि—

तू जिन्दा है, तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर
ये ग़म के और चार दिन, सितम के और चार दिन
ये दिन भी जायँगे गुज़र, गुज़र गये हज़ार दिन
सुबह और शाम के रंगे हुए गगन को चूम कर
तू सुन ज़मीन गा रही है कब से झूम-झूम कर
"तू आ मेरा सिंगार कर, तू आ मुझे हसीन कर"

शंकर शैलेन्द्र को जिन्दगी की जीत पर अटूट विश्वास है। इसीलिए वे अपनी कलम द्वारा उसे हसीन बनाने में जुटे हैं।

———

७
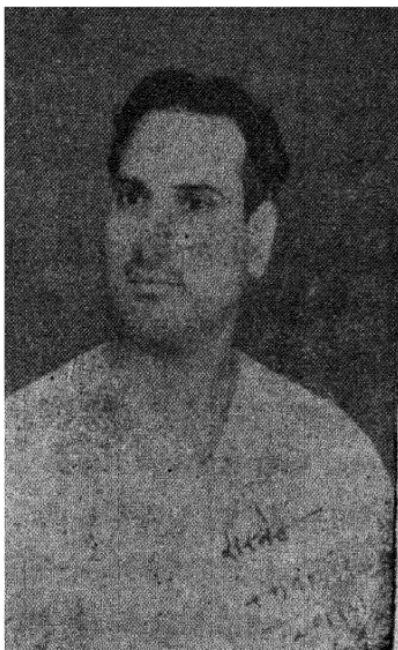
पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

"समाज की संकीर्णता और कुंठित वातावरण से जो साहित्य मुक्ति न दिला सके वह साहित्य नहीं।......

"कवि के नाते मेरी तो यह मान्यता है कि आज कविता का इससे बड़ा कोई उपयोग नहीं कि वह सार्वभौम क्रांति के लिए भूमि तैयार करे।......"

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश',
गोकुलपुरा,
आगरा

★

नयी पीढ़ी के कवियों मे पद्म सिह शर्मा 'कमलेश" का नाम अगली पंक्तियों मे लिया जाता है। उन्होंने अपने साहित्य में एक ओर तो क्रांतिकारी विचारों और निश्चयों की लम्बी चौड़ी घोषणाये बहुत की हैं और दूसरी ओर उनके साहित्य में नियतिवादी, अध्यात्मवादी विचारधारा का प्रभाव इतना गहरा दिखाई देता है कि वे हिन्दू-संस्कृतिवादी विचारकों के अनुयायी मालूम देने लगते है।

मुगल बादशाहों की वैभवक्रीड़ा-स्थली आगरा के निवासी पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' अपनी आयु के ३३ वर्ष पूरे कर चुके है। उन्हें अपनी निश्चित जन्म तिथि ज्ञात नहीं है। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के नगला बरी गांव के एक निर्धन किसान परिवार मे हुआ था। खेती बारी ही इस परिवार का पैतृक व्यवसाय था। कमलेश के पिता स्वर्गीय पंडित किशनलाल शर्मा, जो स्वयं एक मामूली किसान थे, जमींदारी दमन-शोषण के अभिशापों को झेलने के बाद इस देश के लाखों बदनसीबों की भांति असमय मे ही अपनी पत्नी की मांग सूनी कर इस संसार से विदा हो गये थे। उस समय इस दुखिता नारी की गोद मे केवल ग्यारह महीने का एक नन्हा सा शिशु था। पति की मृत्यु के उपरांत यह शिशु ही उस असहाय नारी का जीवन सम्बल और समस्त आशाओं आकांक्षाओं का एक मात्र केन्द्र बन गया। उसने कठिन तपस्या करके इस शिशु का पालन पोषण किया। वह दिन रात चक्की पीसती और गांव के दूसरे घरों से अनाज लाकर नित्य २०-२५ सेर आटा निकालती। इस प्रकार लगातार कई वर्षों तक उसने मजदूरी कर स्वयं अपना पेट भरा

और अपने पुत्र की जीवन रक्षा की। बाद में उसे पढ़ाने-लिखाने के लिए वह शहर आई और वहाँ बाबुओं में घरों में महराजिन बन कर खाना बनाने का काम किया। और आज उसी के सम्पूर्ण परिश्रम तप और त्याग का परिणाम है कि उस का पुत्र उसके श्री-चरणों मे साहित्य-साधना के पुष्प समर्पित कर रहा है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि ७५ वर्ष की वह वयोवृद्धा तपस्वनी आज भी कमलेश के माथे पर अपना वरदहस्त रखे हुये है।

कमलेश का अब तक का जीवन अभाव, गरीबी और भूख-प्यास मे ही बीता है। और इन्हीं परिस्थितियों ने उनके हृदय में विद्रोह की चिनगारी चमका कर उन्हें कवि बनाया था। वे कवि व लेखक इसी उद्देश्य को लेकर बने थे कि जिन विषमतामयी परिस्थितियों में जन्म लेकर उनका जीवन आगे बढ़ा है उन्हें मिटाने के लिये वे अन्त तक प्रयत्नशील रहें। उन्होंने अपने इस निश्चय की घोषणा अपने प्रथम कविता संग्रह मे ही की थी। और यही वह निश्चय है जो सन् १९३४ से, जब कि उन्होंने अपनी प्रथम कविता लिखी थी, आज तक उन्हें प्रेरणा देता आया है। तभी उन्होंने जीवन विरोधी शक्तियों से मोर्चा लिया और आगे बढ़े है। सन् १९३४ मे उन्होंने मिडिल पास करके आगे पढ़ने के लिए आठ रुपये मासिक पर अखबार बेचने की नौकरी की। फिर विशेषयोग्यता पास करके नार्मल मे दाखिला लिया। सन् १९३८ मे उन्होंने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य रत्न की उपाधि प्रथम श्रेणी मे प्राप्त की। इसके अगले वर्ष ही सन् १९३९ में गांधी जी के प्रभाव से राष्ट्र भाषा के प्रचार का व्रत लेकर दक्षिण चले गये और सूरत तथा बम्बई मे रह कर तीन वर्ष तक वे राष्ट्र भाषा का प्रचार कार्य करते रहे। इन नगरों में रह कर कमलेश को जीवन के प्रति एक उदार दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। किन्तु राष्ट्र भाषा प्रचारक मंडल सूरत व बम्बई की संस्थाओं से उन्हें अन्त मे ऐसी घृणा उत्पन्न हुई कि वे सन १९४२ मे आगरा लौट आये और नागरी प्रचारिणी सभा आगरा

में प्रधानाचार्य के पद पर रह कर अध्यापन कार्य शुरू किया। उन्हीं दिनों उन्होंने पुनः अपनी शिक्षा और परीक्षाओं का क्रम शुरू किया और मैट्रिक, इन्टर तथा बी० ए० पास करने के बाद अन्त में सन १९४९ मे आगरा विश्व विद्यालय से हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम स्थान में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। इस अद्वितीय सफलता का यह परिणाम हुआ कि उन्हें तत्काल ही आगरा कालेज के हिन्दी विभाग मे लेक्चरार का पद प्राप्त हो गया, जहां वे इस समय भी कार्य कर रहे है।

व्यक्तिगत जीवन की भाँति कमलेश की साहित्यिक प्रगति भी उज्ज्वल और कर्मठ है। जनवरी सन १९३४ मे साप्ताहिक सैनिक में उनकी प्रथम कविता प्रकाशित होने पर उनका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ हुआ और आज उनके तीन कविता संग्रह हमारे सामने है—प्रथम "तू युवक है" अक्टूबर १९४९ मे, दूसरा "दूब के आंसू" मई १९५२ मे और तीसरा "धरती पर उतरो" अक्टूबर १९५२ में प्रकाशित हुए थे। इनमे से पहले और तीसरे मे कमलेश की प्रगतिशील कवितायें संग्रहीत हैं और "दूब के आंसू" मे उनके प्रेम गीत। इन पुस्तकों के अतिरिक्त कमलेश ने हिन्दी साहित्य को एक नया अवदान भी दिया है, और वह है वर्तमान साहित्यकारो के 'इन्टरव्यू' जो "मै इन से मिला" शीर्षक से दो भागो मे प्रकाशित हो चुके है। साथ ही साथ आपने एक हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास और हिन्दी भाषियों के लिए गुजराती भाषा सीख सकने के लिए "हिन्दी गुजराती शिक्षा" नामक पुस्तके भी लिखी है। उनके अप्रकाशित ग्रन्थो मे चार आलोचनात्मक ग्रन्थ है और अब वे अन्य प्रांतीय भाषाओं के कलाकारों को भी हिन्दी मे लाने का प्रयत्न कर रहे है। इस प्रकार कमलेश की साहित्यिक प्रतिभा का काव्य के क्षेत्र के अतिरिक्त आलोचना एवं निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय विकास हो रहा है। लेकिन उनका कहना है कि अभी सही माने मे उन का लिखना आरम्भ नहीं हुआ है। "मै मानता हूं कि ४-५ वर्ष बाद मेरे साहित्यिक जीवन का आरम्भ होगा, अभी तो यह कुछ नहीं है।"

स्पष्ट है कि कमलेश कठोर साधनारत साहित्यकार हैं और वे सुन्दर तथा उत्कृष्ट साहित्य-निर्माण के लिए साधना पर बल देते हैं। तभी उनके जीवन की यह महत्वाकांक्षा भी है कि "कोई ऐसी साहित्यिक देन छोड़ जाऊँ, ताकि कुछ दिन याद रहूँ।"

कमलेश को निराला की उदार और मानवीय दृष्टि और त्याग ने, दिनकर की राष्ट्रीयता ने, राहुल सान्कृत्यायन की परिश्रमशीलता ने तथा डा० राम विलास शर्मा की ईमानदारी ने विशेष प्रभावित किया है। वे निराला और दिनकर को सबसे अच्छा कवि मानते है। निराला को उनके तूफानों से टक्कर लेने वाले गिरि समान व्यक्तित्व की दृष्टि से और दिनकर को उनकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से। कमलेश साहित्य को जीवन के उत्थान का साधन मानते है और कहते है कि, "समाज की संकीर्णता और कुंठित वातावरण से जो साहित्य मुक्ति न दिला सके वह साहित्य नहीं।" वे जीवन और साहित्य में समन्वय के घोर पक्षपाती है और जिन साहित्यकारों मे यह बात नहीं है उनसे उन्हें कोई प्रेरणा नहीं मिलती है। उनका विश्वास है कि—"आज हिन्दी मे ऐसे साहित्य-कारों और साहित्य की नितांत आवश्यकता है जो जनता को अनुप्राणित करने वाले हों।" कमलेश को काव्य मे पच्चीकारी से घृणा तथा सरलता से मोह है। वे बोधगम्यता को वांछनीय मानते है। उन्होंने "धरती पर उतरो" शीर्षक काव्य सग्रह की भूमिका मे घोषित किया है कि 'कवि के नाते मेरी तो यह मान्यता है कि आज कविता का इस से बड़ा कोई उपयोग नहीं कि वह सार्वभौम क्रांति के लिए वातावरण तयार करे और जनता को उसके वर्तमान की परिस्थितियां तथा भविष्य की सम्भावनाओं से अवगत कराये।"

एक वर्गहीन, शोषणहीन समाज की स्थापना चाहने वाला प्रत्येक व्यक्ति कमलेश के इन विचारों का स्वागत करेगा। किन्तु उनके साथ सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि उन्होंने वर्तमान सरकारों की भांति ही

इतनी ऊंची और महान घोषणायें करके उनकी पूर्ति न कर सकने पर असफलता का दोष प्राप्त किया है। और इसका मुख्य कारण यह है कि यद्यपि वे अपने आपको जाति-पांति और धर्म का कट्टर विरोधी तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' का विश्वासी बताते है किन्तु फिर भी उनके भीतर जाति-पांति-धर्म के रूढ़िगत संस्कार विद्यमान् है, क्योंकि वे घोर नियतिवादी तथा अध्यात्मवादी है। कमलेश के भीतर नियतिवाद का प्रभाव इतना गहरा है कि उसने उनकी समस्त विचारधारा को भीतर से खोखला बना दिया है, उसकी शक्ति और प्रभाव को क्षीण कर दिया है। नियति या भाग्य पर विश्वास करना हृदय की दुर्बलता का प्रतीक होता है। पूंजीवादी तथा शोषणवादी शासक और विचारक नियति के अस्त्र को ही निरीह-भोली-अपढ़ जनता पर प्रयोग कर उसका दोहन और शोषण करते है, और जनता अपने भाग्य को ही कोसा करती है। पूंजीवादी समाज में धर्म अथवा अध्यात्मवादी विचारधारा शोषण का ही प्रबल अस्त्र होती है। कमलेश के अन्दर भी इसी विचारधारा का प्रभाव है। तभी उनके हृदय का विद्रोह और काव्य की प्रगतिशीलता अपनी वास्तविकता खो देती है।

कमलेश के भीतर यह प्रभाव चाहे तो रूढ़िगत संस्कारों की वजह से उत्पन्न हुआ हो, जिसे वे इतने संघर्षों के बावजूद भी अपने से अलग नहीं हटा सके है, चाहे उन्होंने जानबूझ कर बुर्जुआ शिक्षा और दर्शन से इस प्रभाव को ग्रहण किया हो, किन्तु वह उनके भीतर बड़े स्थूल रूप से विद्यमान है। तभी तो उन्होंने नये चीन के अतिथि प्रतिनिधियों के स्वागत गान तक में हिन्दू-संस्कृतिवादी, अतीतवादी व्यक्ति की भांति आध्यात्मिकता और ऊँचे आदर्शों की दुहाई देते हुए कहा था—

मेरा यह भारत ऋषियों की पुण्य भूमि है
आध्यात्मिकता की संस्कृति इसकी थाती है
हिमगिरि इसके आदर्शों की ऊंचाई है
तो गंगा इसके भावों की पावनता है

मैं अपनी आध्यात्मिक संस्कृति
ऊँचे आदर्शों, पवित्र भावों का गायक
(धरती पर उतरो)

कमलेश जिस आध्यात्मिक संस्कृति, ऊँचे आदर्शों और पवित्र भावों का गायक अपने आप को बताते हैं युगों से वही भारतीय जनता के शोषण के आधार रहे है। फिर भी वे मानव की अब तक की समस्त वैज्ञानिक प्रगति को भुलाकर वर्तमान भारत को उसी अतीत की ओर लौट चलने को कहते है या उसी खोये हुए, मरे हुए अतीत को पुनः जीवित करना चाहते हैं और कहते हैं कि:—

आज द्वार पर खड़ा हमारे
खोया हुआ अतीत

अथवा— पद मर्दित भारत के वासी
ऋषियों के पद चिन्हों पर चल

इतना ही नहीं, कमलेश के भीतर पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि वे सम्राट विक्रमादित्य से अवतार लेने की प्रार्थना करते है, और अपने मत मे इस "नाविकहीन देश" मे पुनः एकतन्त्रवादी साम्राज्य की कामना करते है:—

दीन हीन सुख श्रीविहीन शक्तियाँ सो रहीं मौन
बिन नाविक की इसकी नौका पार लगावे कौन
आज खंडहरों से उठती है केवल यही पुकार
इस भारत के हित फिर कोई विक्रम ले अवतार

कमलेश शायद जान कर भी इस तथ्य से मुँह छिपाना चाहते है कि आज इस देश की नौका को इस देश के किसान-मजदूर तथा शोषित जनता पार लगाने के लिए सबल हो चुकी है। फिर भी वे अर्जुन तथा महाराणा प्रताप को पुकारते है और समझते है कि इस देश मे वर्तमान दुख-दैन्य इसीलिए है कि अब देश में अर्जुन और महाराणा प्रताप नहीं है, शायद इस लिए नहीं कि देश मे रावण और कंस बहुत बढ़ गये है।

वे कहते हैं:—

मैं देख रहा सोया नगपति छाती में सौ सौ घाव लिये
गंगा अपनापन भूल रही लहरों में करुण अभाव लिये
सतपुड़ा, विन्ध्य, अवरली मूक जौहर के ठंडे चाव लिये
पानीपत बैठा सोच रहा पौरुष के सोए भाव लिये
डूबे विलास में पांडु पुत्र, होता है मां का चीरहरण

कमलेश को आध्यात्मिकता इतनी प्यारी है कि जब वे क्रांति की प्रतिज्ञा लेते है उस समय भी ब्रह्मा, विष्णु, दिगम्बर को ही साक्षी बनाते है, जनता को नहीं। वे शायद यह नहीं जानते कि इन्हीं की नित्य पूजा करके, इन्ही को साक्षी मान कर छोटे से लेकर बड़े से बड़ा सेठ रोज गरीबों की जेब काटता है, खून चूसता है। वे कहते हैं:—

आज प्रतिज्ञा करते हैं हम
साक्षी हों सुर, नर, मुनि, किन्नर
साक्षी ब्रह्मा, विष्णु, दिगम्बर

और यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि कमलेश के भीतर जाति-धर्म के संस्कार शेष है। तभी तो उन्होंने गांधी जी के प्रति लिखा है:—

तुम को श्रद्धान्जलि देने का अधिकारी जग सारा
किन्तु नहीं हूँ मैं ही केवल मैं हिन्दू हत्यारा

फिर भी कमलेश ने घोषणा की है कि वे जाति-धर्म के कट्टर विरोधी है। क्या कमलेश इस तथ्य से इन्कार करते हैं कि गांधी जी की हत्या करने वाला कोई हिन्दू या मुसलमान या ईसाई नहीं था बल्कि मानवता का हत्यारा था जिसके आज तमाम रूप हैं और जो सभी एक जाति-धर्म के है।

इन्हीं सब दुर्बलताओं ने कमलेश को नियतिवादी बनाया है। केवल भाग्य पर भरोसा करना असहायता और निकम्मापन का द्योतक होता है। क्रांतिकारी सर्वहारा जनता को भाग्य पर नहीं बल्कि अपनी शक्ति पर विश्वास होता है और यही विश्वास ही उसकी निश्चित विजय का

आधार होता है। रूस, चीन आदि देशों की जनता ने यह सिद्ध भी कर दिया है। जिन्दगी तकदीर पर भरोसा करके बैठे रहने से नहीं बल्कि तदबीर करने से बनती है।

नियतिवाद क्रांति विरोधी विचारधारा है। किन्तु कमलेश पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा है जो उनके तीनों काव्य संग्रहों में दिखाई देता है। जिन विषमता पूर्ण परिस्थितियों में कमलेश रहे हैं उन्हें वे नियति की देन मानते है, शोषकों की नहीं। वे कहते हैं—

मैं और न कुछ वह विधि विधान
जो सतत् तिरस्कृत मूक प्राण (दूब के आंसू)

अथवा:- मैं वही हूं जिसे विधि ने गगन से असहाय छोड़ा
(धरती पर उतरो)

तभी तो उन्हें यह कहना पड़ा है कि :—

एक दिन निस्सीम में मिल जायगा अस्तित्व मेरा
फिर न जीवित रह सकेगा यह मधुर व्यक्तित्व मेरा

समाज के वर्ग भेद और दुख दैन्य को भी वे नियति की ही देन बताते है :—

जब नियति हमें कर दीन चुकी
जीवन की निधियां छीन चुकी

इसीलिए वे कहते हैं कि इन विषमतामयी परिस्थितियों पर किसी को विस्मय नहीं करना चाहिये क्योंकि जीवन की निधियां तो भाग्य ने छीनी है शोषकों ने नहीं :—

नियति के पथ में किसी को उचित कुछ विस्मय नहीं है

इस प्रकार वे नियतिवाद का प्रचार कर जनता के हृदय से, असन्तोष और विद्रोह को ठंडा करने का प्रयत्न करते है और एक ओर कविता को सार्वभौम क्रांति का वातावरण तैयार करने की घोषणा करके दूसरी ओर क्रांति की सम्भावनाओं और यथार्थता को दूर करते है।

किन्तु यदि कमलेश के भीतर से नियतिवाद का यह प्रभाव मिट

जाय और वे आध्यात्मिकता के मोह को त्याग दें तो उनके कवि का क्रांतिकारी स्वरूप उज्ज्वल और वास्तविक हो जायेगा। जब तक यह नही होता है तब तक नियतिवाद उनके उद्देश्यों और विद्रोही विचारों को इसी प्रकार ठगता और छलता रहेगा। कमलेश के हृदय मे जो विद्रोह की चिनगारी है उसे नियतिवाद ही आग बनने से रोके हुए है। यद्यपि समाज की वर्गभेद और विषमतामयी परिस्थितियों के विरुद्ध उनके हृदय में विद्रोह की भावनाये है तथा शोषित-पीड़ित समुदाय के प्रति सहानुभूति भी है किन्तु नियतिवाद तथा आध्यात्मिकता के प्रचार की वजह से वह अवास्तविक और असत्य मालूम देने लगता है। प्रगतिशीलता का मान युग और परिस्थितियाँ होती है। आज केवल वर्गभेद स्वीकार करके ऊँच-नीच के भेद भाव को चित्रित करना तथा शोषकों और जनता के हत्यारों को कोसने और गाली देने से ही कोई व्यक्ति प्रगतिशील नहीं बन जाता है। आज प्रगतिशीलता का मान इससे बहुत आगे है, क्योंकि युग और परिस्थितियाँ बदल चुकी है। रूढ़ि और प्राचीनता के संस्कारों को त्याग कर जो सही रूप से सर्वहारा के संगठन तथा क्रांतिकारी उभार को पूरा करने मे सहयोग देता है, वही दृढ़ है। आज तो जीवन विरोधी शक्तियों से हर प्रकार से डट कर मोर्चा लेना ही क्रांतिकारी और प्रगतिशील होना है। कमलेश मे इस बात की कमी है।

यद्यपि कमलेश ने आज के विश्व में सर्वहारा के विकास को देखा है, स्वीकार किया है और वह यह जानते है कि आज शोषित जनता मुक्ति के लिए आगे बढ़ चुकी है, जैसा कि उन्होंने इन चरणों में कहा है—

> जग के नभ पर नई चेतना का सूरज चढ़ता है
> प्रगति पंथ पर वर्तमान् का अभय चरण बढ़ता है
> शाप-ताप पीड़ित पृथ्वी को रूप स्वर्ग का देने
> अपराजित यौवन मानव की नई मूर्ति गढ़ता है

और इसी लिए मिट्टी के पुतलों को जगाते हुए उन्होंने कहा है :—

> मिट्टी के विश्वास सजग हो गीत प्रगति के गाओ तुम

अपनी नित नूतन रचना से भू को स्वर्ग बनाओ तुम
अब अदृष्ट की डोर पकड़ कर भटको मत सूनेपन में
पौरुष का प्रदीप ले जग में अभिनव पथ दिखलाओ तुम

तथा वर्तमान् शासकों को "पथभ्रष्ट" मानकर उसने भी यह कामना की है कि वे:—

आगे आयें
अलख जगायें
शोषण के विरुद्ध
जन हित की ध्वजा उठायें

और जब वर्तमान शासक और कांग्रेसी नेता, जिन पर उन्हें बड़ा भरोसा था, उनकी इस कामना को पूरा नहीं करते, तब वे उन्हें जी भर कर कोसते भी है और कहते हैः—

नर्कों के ठेकेदार
पहन कर खादी के चमचम चोगे
शासन की कलुषित कुर्सी पर
फिर बैठ गये

और जिस प्रकार डाकुओं की तरह इस आजादी को लूट का माल मान कर वे उसे लूटने-बटोरने में लग गये है, उसे देख कर कमलेश के हृदय मे इतना तीव्र आक्रोश उत्पन्न होता है कि वे कहने लगते हैः—

सेवक शासक का पद पाकर
अपने घर में आग लगाकर
अहंकार में चूर
दूर होकर जनता से
इतना गिर जायेगा
यह तो नहीं स्वप्न में भी सोचा था
नहीं एक दो
अरे अबा का अबा यहाँ तो बिगड़ गया है
चिन्तन फल से

सत्य-अहिंसा का सारा सत निचुड़ गया है
सूंघ गया है सांप अनैतिकता सब को
अथवा— मदहोश गये हैं भूल
कि जनता जाग रही है तेजी से
है खोद रही उनकी कब्रें
जिनमें इनकी उजली पोशाक
कफन बन सोयेगी

इस प्रकार कमलेश ने तीव्र शब्दों में अपने क्रोध को मुखर किया है। इन्हीं से मिलते-जुलते शब्द हम आज देश के एक छोर से दूसरे छोर तक साधारण से साधारण व्यक्ति के मुँह से सुनते हैं। किन्तु इतना ही नहीं, कमलेश ने अमरीकी साम्राज्यवाद के बढ़ते हुए खूनी पंजे के खतरे को भी महसूस किया है और दूसरी ओर जनवादी ताकतों की निश्चित विजय पर भी अपना विश्वास प्रगट किया है। उन्होंने कहा है: —

हुआ नशे में डालर के अमरीका अन्धा
करता छोटे देशों में अड्डों का धंधा
नहीं सोचता वह कि मरेगा वह जल्दी ही
और न देगा उसे विश्व में कोई कन्धा
नये एशिया की धरती ने ली अंगड़ाई
शान्ति शत्रुओं के दल पर है आफत आई

अपने आप को भारत की नई पौध की कोमल हरियाली के स्वामी तथा शोषण के शत्रु और किसान मजदूरों की सत्ता का हामी बताते हुए कमलेश ने पूंजीपतियों को चुनौती दी है कि.—

अन्धकार में कभी न अपने
शुभ प्रभात को ठग पायेंगे
पशुता के प्रतीक ये पापी
पूंजीवादी

इनके अतिरिक्त कमलेश ने अपने उद्दाम यौवन का परिचय देते हुए

भोग-विलास को त्यागने तथा कर्तव्य की पूर्ति करने की घोषणा करते हुए कहा है—

लो सुरा के सुखद प्याले तोड़ता हूँ

किन्तु इतना सब होते हुए भी अन्त में कमलेश जब क्रांति की सफलता और पूर्णता के बाद एक वर्गहीन शोषणहीन समाज की स्थापना की कल्पना करके यह कहते हैं कि:—

एक बार तब फिर हम जग के
पथ दर्शक गुरु बन कर सबको
आध्यात्मिकता के अमृत की
नूतन वर्षा से सींचगे

तब उन की समस्त प्रगतिशीलता का वास्तविक रूप सामने आ जाता है। उनके हृदय में जितना विद्रोह है उस सब पर नियति और अध्यात्म-वाद सांप की तरह कुंडली मारे बैठा है। वे यह नहीं सोचते कि उस तथाकथित आध्यात्मिकता के अमृत की वर्षा पुनः समाज में शोषण की जड़ जमा देगी, सम्पूर्ण क्रांति को विफल बना देगी, देश को पुनः पूंजी के ठेकेदारों के हाथों में सौंप देगी। जब तक समाज में पूर्ण रूप से क्रांति पूरी नहीं होती और एक वास्तविक वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं हो जाती तब तक आध्यात्मिकता के प्रचार की बातें करना क्रांति के उद्देश्यों को असफल बनाना ही होगा। कमलेश की विचार धारा और काव्य का यही सबसे बड़ा दोष है जो उनके तीसरे काव्य संग्रह "धरती पर उतरो" में अत्यधिक मजबूत और स्थूल बन गया है। इससे स्पष्ट है कि उनके भीतर इस दुर्बल विचारधारा का उत्तरोत्तर विकास ही हो रहा है जो कि कमलेश के भविष्य के लिए बड़ी खतरनाक सिद्ध होगी।

यहां पर कवि के प्रेम गीतों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक है। उनके यह प्रेम गीत "दूब के आंसू" में संग्रहीत हैं जिनका रचना-काल बड़ा लम्बा है जैसा कि उन्होंने स्वयं बताया है। कवि के प्रथम कविता-सग्रह "तू युवक है" की भांति इस संग्रह में भी अनुभूति के

पैनेपन की कमी महसूस होती है तभी उसकी अभिव्यंजना अधिक प्रभावोत्पादक नहीं बन पाई है। कमलेश ने "अपने प्रेम गीतों में अपने हृदय की व्यथा-कथा ही व्यक्त की है। और उन्हे कला के आवरण में ढकने का व्यर्थ प्रयास नहीं किया है।" यही कारण है कि उनकी इन रचनाओं मे कला की दृष्टि से शिशुता ही नजर आती है। जहाँ तक उनके प्रेम गीतों की विचार और भावधारा का सम्बन्ध है उनमे निराशा और रुदन का गहरा प्रभाव है। किन्तु उन्होंने अपनी भूमिका में ही यह कह कर कि : "प्रेम के कारण उत्पन्न निराशा का चित्रण जिन गीतों मे है वह गीत मेरी भावना की शक्ति या अशक्ति की कसौटी नही है। मेरा वास्तविक रूप उन गीतों मे है, जिनमें वेदना के विष को पीकर आगे बढ़ने के निश्चय की सूचना है। मेरा लक्ष्य निराशा मे विवशता से घुट कर मरना नहीं है, वरन् कर्तव्यरत रह कर गन्तव्य की ओर सकेत करना है।"— कमलेश ने आलोचना का अवसर समाप्त कर दिया है। वास्तव में उनके इस कथन मे सत्यता है। वे निराशा और असहायता को प्रगट करने के बाद अन्त मे कर्तव्य की पुकार की ओर ही अग्रसर हो जाते है। पड़े रोते नहीं रहते है।

कमलेश की भाषा में कोई विशेष आकर्षण नही है। वह पढ़-लिखे वर्ग की भाषा है। उन्हे कविसम्मेलनों के वर्तमान विकृत स्वरूप से घृणा है। तभी उन्होंने उनमे भाग लेना बहुत कम कर दिया है। उनका मत है कि, "कवि सम्मेलन सर्वत्र न होकर विशिष्ट अवसरों पर ही साहित्यिक अनुष्ठान के रूप मे होने चाहिए जिनमें कविता कंठ कला ही नही रहे बल्कि उन्हें पढ़ने से पहले जांच लिया जाया करे।"

कमलेश अपने भविष्य को उज्ज्वल और सुनिश्चित बनाने मे प्रयत्नरत है। वे साहित्य की शक्ति तथा प्रयोजनशीलता और भावी सम्भावनाओं के प्रति सचेत हैं।

८

शम्भूनाथ सिंह
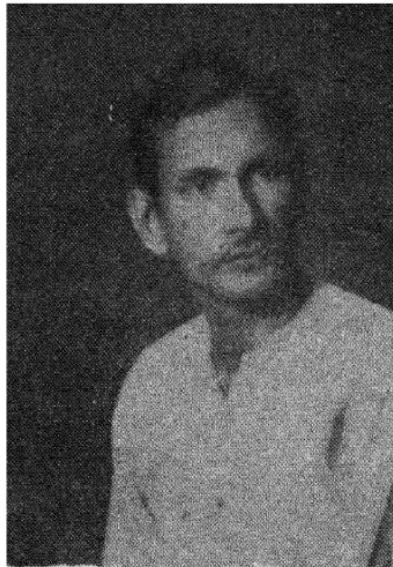
"साहित्य मेरी साधना है, जिसका साध्य है सामाजिक जीवन का उत्कर्ष······मैं तथाकथित प्रगतिवाद और प्रतिक्रियावाद की जगह स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद या सामाजिक यथार्थवाद में आस्था रखता हूँ।······"

शम्भूनाथ सिंह,
काशी विद्यापीठ,
बनारस

★

नयी पीढ़ी के ख्यातिनामा कवियों में शम्भूनाथ सिंह बनारस के वह प्रमुख व प्रतिभावान कवि हैं जो छायावादी रोमेन्टिक प्रभाव को लेकर साहित्य में आए थे और आज उन प्रचारकों की पंक्ति मे जा खड़े हुये हैं जो सर्वहारा की मुक्ति, प्रगति और जनवाद के नाम पर सोवियत रूस पर कीचड़ उछाल रहे हैं।

शम्भूनाथ सिंह का जन्म एक क्षत्रिय परिवार में सन् १९१७ में (निश्चित तिथि उन्हें ज्ञात नहीं है) उत्तर प्रदेश के निर्धन खेतिहार इलाके जिला देवरिया मे स्थित ग्राम रावतपार मे हुआ था। वे अपनी आयु के ३५ वर्ष पार कर चुके है। उनके पिता ठाकुर रामदेव सिंह एक मामूली जमींदार हैं और रावतपार मे खेती कराते हैं। कई पीढ़ियों से खेती ही उनके परिवार का मुख्य व्यवसाय रहा है। आपके पूर्वज ग्राम अमेठी जिला लखनऊ के निवासी थे और उससे भी पहले राजस्थान के। रावतपार मे पैतृक सम्पति के रूप में आप के परिवार के पास थोड़ी जमीन और जायदाद अभी शेष है। शम्भूनाथ सिंह को शिक्षा की पर्याप्त सुविधायें बचपन से ही सुलभ रही हैं, क्योंकि आपके पिता इस सम्बन्ध मे बड़े जागरूक थे। एम० ए० तक उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद शम्भूनाथ सिंह ने पहले तो पत्रकारिता आरम्भ की, किन्तु आजकल काशी विद्यापीठ में अध्यापक हैं। आप विवाहित हैं और एक सन्तान भी है।

शम्भूनाथ सिंह ने १५ वर्ष की आयु से ही कविता लिखना आरम्भ किया था। जब आप सन् १९३२ मे वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल मे

कक्षा ६ में पढ़ते थे तभी आपने प्रथम कविता लिखी थी और उसी वर्ष आपकी एक रचना सबसे पहली बार 'साप्ताहिक भारत' में प्रकाशित हुई थी। तब से आप लगभग तीन सौ कवितायें लिख चुके है। शम्भूनाथ सिंह की साहित्यिक प्रतिभा केवल काव्य के ही क्षेत्र में सीमित नही रही है, बल्कि उसका सर्वतोमुखी विकास हुआ है। आपने एकांकी नाटक और कहानियां भी काफी संख्या मे लिखी है। आपके चार कविता संग्रह, दो कहानी संग्रह और छायावादी युग पर अलोचना की एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। कविता संग्रहों मे सबसे पहले 'रूपरश्मि' प्रकाशित हुई थी, उसके बाद 'छायालोक' सन् १९४५ मे, फिर 'उदयाचल' सन् १९४६ मे और फिर 'मन्वन्तर' सन् १९५१ मे प्रकाशित हुआ। शम्भूनाथ सिंह का पांचवां कविता-संग्रह 'दिवालोक' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। आपके प्रकाशित कहानी संग्रहों के नाम 'विद्रोह' और 'रात रानी' हैं। आपके अप्रकाशित ग्रन्थों मे 'रंग और रेखाये' एक कहानी संग्रह, 'धरती और आकाश' एक नाटक, 'तूफान से पहले' एकांकी नाटकों का एक संग्रह, 'कल्पना' एक प्रबन्ध काव्य और 'नई कवितायें' एक अन्य कवितासंग्रह भी है।

शम्भूनाथ सिंह समाजवादी विचारधारा के व्यक्ति है। उस विचार-धारा के, जो कि भारतीय समाजवादी दल और उसके नेता जयप्रकाश लोहिया, मेहता, देव की है। उन्होंने अपनी विचारधारा और साहित्य के प्रति दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे लिखा है कि, "मै तथाकथित प्रगतिवाद और प्रतिक्रियावाद की जगह स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद या सामाजिक यथार्थवाद मे आस्था रखता हूं। सामाजिक प्रगति मे योग देना ही मै जीवन का लक्ष्य मानता हूं।" शम्भूनाथ सिंह का यह कथन महत्वपूर्ण और विचारणीय है, क्योंकि उनकी समस्त नयी रचनाये, जो कि 'मन्वन्तर' मे संग्रहीत है, उनके इसी कथन की उपज या प्रतिबिम्ब मात्र है।

शम्भूनाथ सिंह भारतीय समाजवादी दल के सदस्य रहे हैं। (किन्तु अब नहीं है ऐसी उन्होंने घोषणा की है।) भारतीय समाजवादी दल दक्षिण पंथी वामपक्षी राजनीति का पोषक रहा है। और शम्भूनाथ सिंह इसी दल और उस की इसी राजनीति से प्रेरणा तथा निर्देश ग्रहण करते रहे हैं। तभी वे तथाकथित प्रगतिवाद' के विरोधी हैं। 'तथाकथित प्रगतिवाद' से उनका आशय ठोस मार्क्सवाद से ही है। वे कम्यूनिस्ट विरोधी विचारधारा के व्यक्ति हैं। तभी वे आज के समूचे प्रगतिशील साहित्य को 'तथाकथित प्रगतिवादी' साहित्य के नाम से पुकारते हैं, अर्थात वे उसे प्रगतिवादी मानने से इन्कार करते हैं। किन्तु जिस विचारधारा पर वे विश्वास करते हैं उसे उन्होंने 'स्वच्छन्दतावादी यथार्थ-वाद' या 'सामाजिक यथार्थवाद,'' के नाम से पुकारा है। उनके इस स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद का स्वरूप हमें उनकी उन सभी रचनाओं में देखने को मिलता है जिनमें वे उनके नाम पर अपने को तटस्थ या स्वच्छन्द बतलाकर सोवियत विरोधी प्रचार करते है।

आज इस तथ्य से कोई भी इन्कार नहीं करता है कि आज की दुनियाँ दो दलों में विभाजित है, एक का नेता अमरीका और दूसरे का रूस है। जो स्वतंत्र देश अपने आप को तटस्थ मानते है वे भी स्पष्टतया इधर या उधर झुके हुए है। अपनी करतूतों में अमरीकी दल सोवियत दल से पूर्णतया भिन्न है। कोरिया में लाखों-करोड़ों मासूमों का वर्षों से खून बहाते रहना, जापान और पश्चिमी जर्मनी में भूतपूर्व नाजी और फासिस्त दरिन्दों के संगठन और शक्ति को पुनः बढ़ाना, च्यांगकाई शेक को सहायता व सुरक्षा प्रदान करना, वियतनाम और मलाया में आतंक युद्ध के नाम पर गोलियाँ बरसाना, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के नाम पर मानवता को कलंकित करना और समूचे पश्चिमी यूरोप, मध्य पूर्व तथा सुदूर पूर्व के सभी देशों मे सैनिक अड्डों का जाल बिछाना, यह सब अमरीका और उसके पिछलग्गू देशों का काम नहीं तो और किसका है? और इन सब करतूतों का एक मात्र उद्देश्य क्या है? केवल विश्व मे शोषण-

दोहन बनाये रखना, जनता को चूसते रहना और इसके लिए सोवियत संघ व जनतंत्रीय शक्तियों के विरुद्ध महायुद्ध की तैयारी करना। ऐसी स्थिति मे जो राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, कोई भी सोवियत रूस के विरुद्ध प्रचार करता है, वह निस्सन्देह रूप मे अमरीकी हितों का ही पोषण करता है, क्योंकि उससे अमरीकी प्रचार को बल मिलता है, जनता में भ्रम उत्पन्न होता है।

शम्भूनाथ सिह ने अपनी रचनाओं मे यही काम किया है। उन्होंने अपनी नीति और दृष्टिकोण की तराजू के दोनों पलड़ों पर रूस और अमरीका को रख कर उन्हे बराबर तौला है। इस प्रकार उन्होंने अपने 'स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद' की स्वयं व्याख्या कर दी है, और जब वे यह कहते है कि—"मै सामाजिक जीवन मे योग देना ही जीवन का लक्ष्य समझता हूँ," तब उनके उद्देश्यों का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

शम्भूनाथ सिह कहते है कि, "साहित्य मेरी साधना है, जिसका साध्य है सामाजिक जीवन का उत्कर्ष।" और वे जिस सामाजिक जीवन के उत्कर्ष को अपना साध्य बताते हैं, वह वही है जो क्लीमेंट एटली के शासन काल मे ब्रिटेन मे रहा है और जो आजकल मार्शल टीटो के यूगोस्लाविया मे है। उसी सामाजिक जीवन की स्थापना वे भारत मे चाहते है और उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सोवियत विरोधी साहित्य लिख रहे है। शम्भूनाथ सिह ने लिखा है कि—"मुझ पर श्रीमती महादेवी वर्मा का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है।" इस अर्थ मे भी उनके विद्रोही अथवा प्रगतिशील स्वरूप का वास्तविक रूप स्पष्ट हो जाता है। इसका तात्पर्य यही है कि उन पर छायावाद का गहरा प्रभाव है। महादेवी जी के अतिरिक्त वे 'प्रसाद' को हिन्दी का सबसे अच्छा कवि मानते है। उन्होंने छायावादी कवियों और उनकी भावधारा से प्रेरणा और अनुभूति ग्रहण की है। पुराने कवियों में शम्भूनाथ सिंह तुलसी और कबीर को महान मानते हैं। "क्योंकि इन कवियों ने मानव को जीवन के केन्द्र में

प्रतिष्ठित करके काव्य रचना की है।" काव्य के सम्बन्ध में शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि 'मोको तो मेरो कवित्त बनावत।'

शम्भूनाथ सिंह के अब तक के प्रकाशित चार कविता संग्रहों में उनके कवि विकास की चार स्पष्ट मंजिलें दिखाई देती हैं। यद्यपि प्रथम दो कविता संग्रहों (रूप रश्मि और छाया लोक) का कवि घोर रोमेन्टिक और प्रणय चित्रण करने वाला कवि था, किन्तु 'रूपरश्मि' में काम और यौवन की रंगीनी का जो उतावलापन और लालसा थी वह 'छायालोक' में कुछ कम हो गई और उस के स्थान पर गहराई और प्रखरता आ गई। 'छाया-लोक' की भूमिका में स्वयं शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि, "जीवन के प्रथम प्रभात में जीवन और जगत के सौन्दर्य की जो रंगीनी रूपरश्मि में चित्रित हुई है यौवन की चढ़ती बेला में सत्य की प्रखर किरणों ने उसे मिटा दिया। जीवन के पथ पर बढ़ते हुए कवि के सहज सुकोमल मन ने क्लान्त होकर विश्राम चाहा। उसे जीवन के सपनों की शीतल छाया अनायास ही मिल गई।" तभी शम्भूनाथ सिंह रूपरश्मि को निहार कर छाया लोक के वासी बन गये। 'छायालोक' की सभी कवितायें कवि के काल्पनिक स्वप्नों के चित्र हैं। उनमें कहीं भ्रांति है, कहीं मिलन का सुख है। तब कवि अपने जीवन-काल की शिला पर मधुर चित्र बनाकर उन्हें स्वयं ही मिटाया करता था और इस क्रिया में सुख-सन्तोष का अनुभव किया करता था। उसकी कल्पना में अभाव, निराशा, पहिचान और उपालम्भ, प्राप्ति और संयोग, बिछुड़न और वेदना सभी के चित्र थे। और उन्हीं सब चित्रों की प्रतिरूप 'छायालोक' की रचनायें हैं। कवि ने स्वयं लिखा है कि—"छाया लोक में श्रम और विश्राम के क्षणों की विविध अनुभूतियां अभिव्यक्त हुई हैं। ये कवितायें जीवन के मीठे-कड़वे सत्यों की स्वप्निल छायायें हैं।"

'उदयाचल' में शम्भूनाथ सिंह के कवि का स्वरूप अपने दोनों पूर्व कविता संग्रहों से पूर्णतया भिन्न हैं। 'रूपरश्मि' से घायल होकर जब कवि कुछ समय तक स्वप्नलोक में सो चुका तब वह उदयाचल में आकर

जागा। उदयाचल में शम्भूनाथ सिंह के कवि का जागृत स्वरूप है। उस में ललकार है, उद्बोधन है, संघर्ष और विद्रोह की भावना है। शम्भूनाथ सिंह ने स्वयं उदयाचल की पृष्ठभूमि में लिखा है कि: "उदयाचल में कवि के जीवन की जागरण वेला की चेतन अरुणिमा से आलोकित और दिन के गतिमय प्रकाश से तरंगित तूफानी भावधारा बही है।" किन्तु कवि की यह तूफानी भावधारा बड़ी दुर्बल और कृत्रिम सी प्रतीत होती है, क्योंकि उस पर उसके जीवन की पूर्व-भावधारा की काली छाया है। स्वप्नों की दुनिया को त्याग कर कवि जब जागा तब उसकी आखें चकाचौंध मे पड़ गई। थोड़ी देर तक वह अपनी आखे मलता रहा। वाह्य जगत का कठोर संघर्ष और समाज का उत्पीड़न-दोहन देखकर वह चौक सा उठा, क्योंकि वह नवीन यथार्थवादी जगत मे आ गया था। किन्तु वह अब भी अपने पूर्व संस्कारों को समेटे हुये था। उसके हृदय से सपने चले गए थे, किन्तु उनकी याद शेष थी। उसके मन में अतीत के सपनो का मोह था और वर्तमान शोषणपूर्ण यथार्थ के विरुद्ध विद्रोह की भावना भी। कुछ समय तक कवि इन दोनों प्रवृतियों को साथ साथ लेकर भाव जगत मे चलता रहा। 'उदयाचल' की समस्त रचनायें उसी समय की है, जिसे स्वीकार करते हुए शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि—"जीवन में यदि कल्पना और स्वप्नों को सत्य और यथार्थ के साथ समझौता करके बने रहने का अधिकार है तो काव्य मे भी दोनों तरह की भावधारायें निर्विरोध रूप से साथ साथ बहती रहेंगी। समग्र मानव समाज एक ही साँचे मे ढाले सिक्कों की तरह नहीं हो सकता और काव्य की शत शत धारायें भी विभिन्न भाव भूमियों पर होती हुई विभिन्न दिशाओं मे बहती रहेंगी।"

शम्भूनाथ सिंह का यह दृष्टिकोण घोर प्रगतिविरोधी अथवा प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण है। वे कल्पना और यथार्थ अथवा स्वप्न और सत्य दोनों को एक साथ लेकर चलना चाहते हैं जो कठिन तो है ही साथ मे हानिकारक भी है। एक ही व्यक्ति क्रांतिकारी और क्रांति

विरोधी दोनों एक ही समय में नहीं हो सकता है। वस्तुतः ऐसी बातें करने वाले व्यक्ति क्रांति विरोधी ही होते हैं। तभी तो शम्भूनाथ सिंह ने यहाँ तक लिखा है कि—"मेरे उपचेतन में स्थित कवि ने कभी किसी वाद को उद्देश्य मान कर नहीं अपनाया।" और उदयाचल की अपनी कविताओं के सम्बन्ध मे उन्होंने लिखा है कि—"काव्य के मूलगत सौंदर्य को किसी वाद विशेष की चौखटों में कसकर अपरूप कर देना अथवा व्याख्यानदाता और उपदेशक बनकर किसी राजनीतिक-मंच पर से उछलकूद करने की स्थूल कला इन कविताओं में नहीं मिलेगी।......कवि द्रष्टा होता है, नेता नहीं।"

शम्भूनाथ सिंह के यह विचार अत्यन्त जर्जर पतनोन्मुख संस्कृति के प्रतीक और एक अभिजातवर्गीय साहित्यकार के से विचार हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि विश्व का आज तक का कोई भी किसी समय का साहित्य वादहीन साहित्य नहीं रहा है। हर युग का साहित्य उस युग की विचारधारा, अर्थनीति और समाजव्यवस्था का प्रतिबिम्ब और उपज है। और दूसरी बात यह है कि स्वयं शम्भूनाथ सिंह आजकल जो कुछ लिख रहे है वह सबका सब एक निश्चित वाद की चौखट मे कसा हुआ है, और वह वाद है प्रगति विरोधी वाद या अमरीकी प्रचारवाद। अपनी सोवियत विरोधी प्रचार की कविताओं मे शम्भूनाथ सिंह व्याख्यानदाता भी है, उपदेशक भी है, प्रचारक भी है। इस प्रकार उन्होंने स्वयं अपने कथन को असत्य सिद्ध किया है। उनके कवि का यह स्वरूप उनके चौथे कविता संग्रह 'मन्वन्तर' मे बिलकुल बेनकाब होकर हमारे सामने आया है। 'मन्वन्तर' की कविताओं के सम्बन्ध मे आपने लिखा है कि—"युग और समाज को बदलकर नये जीवन मूल्यों की स्थापना करना ही इन कविताओं का उद्देश्य है।" कहना न होगा कि यह जीवन मूल्य क्या है।

शम्भूनाथ सिंह के कवि विकास की अब तक की यही चार मुख्य अवस्थायें रही है। पहले वे रूप और यौवन की रंगीनियों में उलझे रहे,

फिर स्वप्नद्रष्टा बने, फिर विद्रोह की ललकार लगाने लगे और अब सोवियत विरोधी प्रचार कर रहे हैं। 'छायालोक' का कवि कल्पनालोक का वासी था। उस समय वह गाया करता था :—

समय की शिला पर मधुर चित्र कितने
किसी ने बनाये किसी ने मिटाये

उस समय उसे हर सांस में प्रणय की गन्ध मिलती थी और रात-दिन वह अपने काल्पनिक प्रिय से हास-अभिसार में लीन रहता था :

दिन थे प्रणय हास, निशि प्यार के पाश
उड़ती रही ले प्रणय गंध हर सांस

किन्तु उस समय कवि शून्य में विचरण किया करता था। उसके सामने सब कुछ अनिश्चित था, वह भ्रांति में था :

शून्य में निर्बन्ध जीवन उड़ रहा बन तूल साधन
गति अनियमित, पथ अनिश्चित, भ्रांति ही अब साधना धन

बस वह किसी की याद में जी रहा था :—

युगों से दीप प्राणों का किसी की याद में जलता

तब 'किसी के रूप के बादल' और 'किसी की आंख के सपने' तथा 'किसी की छाया' दिन रात उसे बेचैन किए रहती थी। न वह सो पाता था, न कुछ कर पाता था। बेसुध सा जीवन व्यतीत करता था :—

बेसुध सा हो जाता हूँ सुन
जाने किस पायल की रुन झुन
रख देता हूँ पथ पर अपने
प्राणों के ये शतदल चुन चुन

किन्तु इतने पर भी जब उसका प्रिय जब कुछ ध्यान न देता था, तब उससे 'पाषाण मत बनों तुम' की गिड़गिड़ाहट करते हुए समर्पण के स्वरों में कहते थे :—

देवि मेरी साधना की अब अधिक मत लो परीक्षा
आज तुम न विफल बनाओ युग-युगों की यह प्रतीक्षा

ओ निठुर, आया शरण जो क्या उसे ठुकरा सकोगी ?

अन्त में निराश होकर कवि कह उठता था:—

दीपक सभी बुझाकर, बीती सभी भुलाकर
मन सो रहा कभी का, आशा सभी मिटा कर

और फिर बिना किसी गन्तव्य के एक आदि-अन्त हीन राह पर चल दिया था। न वह अपनी स्थिति को जानता था, न वाह्य जगत को। उसे कोई ज्ञान न था। वह कहता था:—

न इस राह का आदि मैं जानता हूँ
न इस राह का अन्त मैं मानता हूँ
दिशा पंथ की एक पहिचानता हूँ
नहीं जानता छल रहा पंथ को मैं
स्वयं पंथ से या छला जा रहा हूँ

यही 'छायालोक' के कवि का मुख्य स्वरूप है, जो 'उदयाचल' में एक करवट लेता है और प्रथम कविता में ही अपने मन से कह उठता है:-

मुखरित कर मधुर गान मेरे मन कोई
बीते वह गहन रात, अब न बहे व्यथा वात
झुलसे जीवन में लहराये मधुर प्रात
रह न जाय बीती निशा का बन्धन कोई

तब वह स्वयं कहने लगता है:—

मैं तोड़ रहा पिछले बन्धन
मैं भूल रहा पिछला जीवन

और वह अपने प्रिय से डाँट कर कहता है:—

मुझ को पुकारती क्यों ?
मैं छोड़ स्वप्न छाया, इस दूर देश आया

तब वह कहने लगता है कि 'जीवन जागरण का नाम,' और अपने गीतों के सम्बन्ध में बतलाता है कि:—

ये न स्वप्न देश वाले, ये न मधु प्रदेश वाले

ये न रेशम वेश वाले, मेरे जागरण के गान

तब कवि संघर्ष को प्यार करने लगता है, बाधाओं से लड़ने लगता है और कहता है कि समाज से वैषम्य और दुख दैन्य को वह मिटाना चाहता है:—

जग जीवन के तममय पथ से लड़ता चलता हूँ मैं प्रतिपल
हंसता ज्वालाओं में जल जल, हंसता अंगारों पर चलचल

अथवा—अपार सिन्धु सामने, मगर न हार मानना
असीम शक्ति बाहु में, अनंत स्वप्न के व्रती
तुम्हें लहर पुकारती

देश-देशान्तरों में विद्रोह की प्रज्वलित अग्नि को देख कर कवि पहली बार यह स्वीकार करता है कि, 'विप्लव की वेला आया है।' और तब वह कहता है:—

नहीं पर मरेंगे, नहीं हम मिटेंगे
न जब तक यहाँ विश्व नूतन रचेंगे
विषम भूमि को सम बनाना हमें है
निठुर व्योम को भी झुकाना हमें है

अथवा-करने को वर्ग श्रेणि समतल, होने को है विस्फोट प्रबल
मिटने को रूढ़ि विकार सकल, यह परिवर्तन क्षण की हलचल

और तब कवि पहली बार ललकार लगाता है :—

कण कण में नवजीवन करता युग अभिनन्दन
तुम भी बिछुड़े टूटे मानव मन को जोड़ो
तोड़ो कारा तोड़ो

'उदयाचल' में शम्भूनाथ सिंह के कवि का यही मुख्य स्वरूप है जो यदि 'उदयाचल' के बाद की उनकी कवितायें बिल्कुल न पढ़ी जाय, तो यह बड़ा भारी एक भ्रम उत्पन्न करती है कि वे एक महान प्रगतिशील कवि है। किन्तु 'उदयाचल' के कवि की समस्त प्रगतिशीलता 'मन्वन्तर' में आकर बिल्कुल साफ हो जाती है, जब वे यह कहते है कि :—

कहीं झंडा ले तिरंगा चक्रमंडित
या ध्वजा हसिया हथौड़ा से सुशोभित
देश की या धर्म की देकर दुहाई
नाम गान्धी या कि स्टालिन का सुनाकर
कहीं स्वर्णिम रंग डालर का दिखाकर
और स्टालिन को भयंकर भूत जैसा रूप देकर
कहीं ट्रूमन को बना शैतान गाली दे मनोहर
कह रहा संसार सारा बट गया है दो शिविर में
सम्मिलित होना किसी दल में जरूरी हो गया है
सिर्फ तन का ही न
मन का भी तुम्हारे हो रहा शोषण

यही नहीं कोरिया युद्ध पर लिखी गई 'काली छायायें' शीर्षक कविता मे शम्भूनाथ सिह ने कोरिया युद्ध के लिए सोवियत रूस को पूर्णतया दोषी ठहराते हुए लिखा है :—

काली छायायें बढ़ी आ रही हैं
कहीं पर शोषण से मुक्ति का बहाना ले
कहीं पर डालर का स्वर्णिम खिलौना ले
सब्जबाग मोहक दिखाती हुई
ध्येय पर सबका एक है
पूर्ण अधिनायकत्व
कोटि-कोटि जनता के जीवन को
पूंजी या कि पार्टी के
दैत्याकार चंगुल में कस कर पीसना

इस से भी घृणित सोवियत रूस विरोधी प्रचार कवि ने 'शान्ति के लिए युद्ध' शीर्षक एक व्यंग नाटिका मे और 'पर्वतेश्वर' शीर्षक मार्शल स्टालिन की वर्षगांठ पर लिखी गई कविता मे किया है। 'शान्ति के लिये युद्ध' में सोवियत रूस को भालू की उपमा देकर कवि लिखता है :

'भैया यह मेरा भालू
दुनियाँ के जंगल का भालू
सितारा इसका बहुत बुलन्द
आज आधी दुनियाँ के ऊपर
तपता यह बन तानाशाह'

'मन्वन्तर' मे शम्भूनाथ सिंह का यही मुख्य सोवियत विरोधी रूप है। उनकी इन कविताओं को पढ़ कर अमरीकी युद्ध लोलुप साम्राज्य-वादियों का प्रचार याद आने लगता है और आश्चर्य होता है कि दोनों में कितना साम्य है। इस प्रकार शम्भूनाथ सिंह की सम्पूर्ण प्रगतिशीलता धोखे की टट्टी बन जाती है, जिसकी आड़ मे खड़े होकर वे रूस पर तीर चलाते है।

उन्होंने कोरिया युद्ध को उकसाने का रूस पर आरोप लगाते हुए अमरीकी प्रचारकों के शब्दों मे कहा है:—

दीख रही बन्दूकों की छाया
किसी मूंछवाले पाइप पीते हुए
दैत्य जैसे मार्शल के इंगित पर
उत्तर से दक्षिण को बढ़ती

और फिर वे अपने देश की जनता से कहते हैं कि अमरीका और रूस दोनों ही नरक के कुत्ते है, इन से मत बोलो, इन्हें लड़ने दो:—

छोड़ दो, न छेड़ो, यह है नरक के कुत्ते;
इन्हें आपस में लड़ने दो।

इसी प्रकार 'पर्वतेश्वर' शीर्षक कविता में शम्भूनाथ सिंह ने मार्शल स्टालिन पर व्यंग के तीर चलाते हुए कहा है कि, "आज आधी दुनियाँ तुम्हारे पैरों के नीचे तुम्हारी गुलाम है, किन्तु स्वयं तुम्हारे देश सोवियत रूस मे न तो समता है, न स्वतन्त्रता; बल्कि फासिस्टों जैसा राज्य है।" इतना सब प्रचार करने के बाद भी जब शम्भूनाथ सिंह यह उपदेश देते है कि:—

पथ पर बैठ रहना न भटक जाना बन में
वादों के और विवादों के, यह अभिलाषा
मेरी। मानवता से बढ़ कर है जीवन में
कोई न वाद। पूरी करना मेरी आशा (मन्वन्तर)

तब उनके बुद्धि और विवेक पर तरस आने लगता है। शायद वे यही सिद्ध करना चाहते हैं कि वे स्वयं किसी वाद या विवाद में नहीं फँसे हुए है। किन्तु यह कितना सत्य है यह ऊपर की विवेचना से स्पष्ट है और 'मन्वन्तर' के अध्ययन से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है।

'मन्वन्तर' में शम्भूनाथ सिंह का एक और मुख्य तथा उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिलता है और वह यह कि उसकी अधिकांश कवितायें, दो-तीन को छोड़ कर, मुक्त छन्द में लिखी गई है। इन रचनाओं में मुक्त छन्द का प्रयोग कवि ने पहली बार किया है। भाषा आद्योपान्त सरल है। किन्तु बीच बीच मे क्लिष्टता आ जाती है। शम्भूनाथ सिंह को कवि सम्मेलनों से बहुत अरुचि है, क्योंकि उनसे उनकी दृष्टि में "कवियों का मानसिक पतन हो रहा है और काव्य का स्तर नीचे गिर रहा है।" शम्भूनाथ सिंह के जीवन की महत्वाकांक्षाये अनेक तथा महान है। वे विदेश यात्रा और हिमालय के भीतरी भागों में भ्रमण करने के अतिरिक्त भारतीय रंगमंच का उन्नयन और 'कला निकेतन' नामक एक शिक्षा संस्था का संगठन करना चाहते हैं। वे अपनी इन महत्वाकांक्षाओं की की पूर्ति के प्रति बड़े आशावादी है।

९

चन्द्रभूषण त्रिवेदी
'रमई काका'
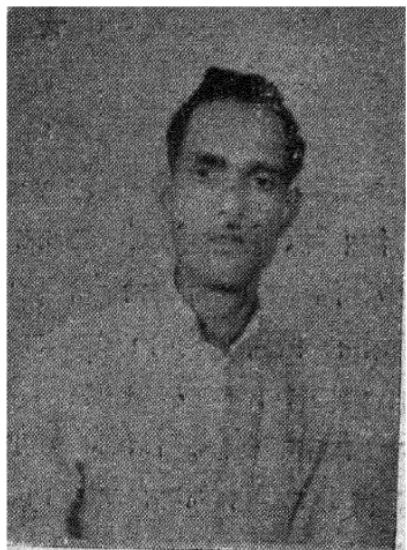
"जो साहित्य जनता के हृदय को आकर्षित करे, जो जन-मन का मंगल करे, जिसकी अधिक से अधिक व्यापकता हो, मैं उसी साहित्य के पक्ष में हूँ। तथा, यदि काव्य में नया प्रयोग हो तो वह भी सभी के प्राणों से अनुप्राणित होना चाहिए।"

चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका'
आल इण्डिया रेडियो,
लखनऊ

★

जिस किसी ने कभी भी लखनऊ रेडियो से ग्रामीण जनता के "हमारा पंचायतघर" कार्यक्रम को सुना होगा, वह 'काका' के नाम से भलीभांति परिचित होगा। लखनऊ रेडियो पंचायतघर के यही परम स्नेही रमई काका हमारे वर्त्तमान हिन्दी साहित्य के अवधी भाषा के प्रख्यात किसान कवि है जिन्होंने भाषा, भावाभिव्यक्ति, जीवन-चित्रण, सभी रूप में ग्रामीण जीवन और उसके भोले, निश्छल दृष्टिकोण का यथार्थ, गम्भीर और हास्यपूर्ण वर्णन किया है।

रमई काका का जन्म फाल्गुन वदी द्वीज, सम्वत १९५२ को उत्तर प्रदेश के खेतिहर इलाके उन्नाव जिले के रावतपुर नामक गांव में एक किसान परिवार मे हुआ था। आपका पूरा नाम पंडित चन्द्रभूषण त्रिवेदी है। "रमई काका" लखनऊ रेडियो के पंचायतघर का दिया हुआ नाम है। किन्तु अब उनका यह नाम इतना विख्यात हो गया है कि अधिकतर लोग उन्हे इसी नाम से जानते हैं और साहित्य में भी उनके कवि का यही नाम पड़ गया है।

चन्द्रभूषण के पिता स्व० पं० वृन्दावन त्रिवेदी एक मामूली किसान थे। रावतपुर के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवारों में आपका परिवार विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अपने गांव में ही शिक्षा आरम्भ करने के बाद आपने पहले मिडिल पास किया और बाद में हाई स्कूल। बचपन से लेकर अब तक का अधिकतर जीवन गांव में ही बीतने की वजह से आपके कोमल हृदय पर गांव के दुखी, गन्दे, पिछड़े हुए, रूढ़ि-ग्रस्त जीवन और उसकी यातनाओं का गहरा प्रभाव पड़ा है। तभी आप

जब केवल १२ वर्ष की अवस्था में कक्षा ६ में पढ़ रहे थे आप ने अपनी ग्रामीण भाषा मे ही कविता लिखना आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में आप एक मनोरंजक घटना का भी उल्लेख करते हैं।

यह घटना उस समय की है जब चन्द्रभूषण मिडिल स्कूल में पढ़ रहे थे। एक दिन भोजन बनाते समय आपके हेडमास्टर पंडित गौरीशंकर जी आपके निकट पहुँचे और आपके रोटी सेकने का तवा टेढ़ा देखकर उन्होंने कुछ व्यंग किया। आपको वह बात खटकी और आपने उसी समय अपने तवे की प्रशंसा में एक कविता लिख डाली।

बाद मे हेड मास्टर साहब ने जब वह कविता सुनी तो खूब जोर से हंस पड़े और चन्द्रभूषण की पीठ पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया कि "एक दिन तुम कवि के नाम से प्रसिद्ध होगे।" आज अपने उन हेड मास्टर की भविष्यवाणी की पूर्णता की अवस्था मे पहुँच कर रमई काका को विश्वास है कि उन का आशीर्वाद फला है। इसी प्रकार एक आशीर्वाद आपको बाद मे लखनऊ विश्वविद्यालय के एक कवि सम्मेलन मे स्वर्गीय पंडित वलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस'' ने दिया था, जिन की लीक और परम्परा को ही आज आप हिन्दी साहित्य मे आगे बढ़ा रहे है। वर्तमान युग मे केवल "पढ़ीस" जी अवधी भाषा के विद्वान और कुशल कवि थे। उनके बाद अब रमई काका का ही नाम आता है।

गांवों की दुर्दशा को देख कर आरम्भ से ही आपके दिल मे गांवों के विकास तथा सुधार की भावना थी। अतएव हाई स्कूल पास करने के बाद आपने ग्राम सुधार के कार्य की ट्रेनिंग ग्रहण की, जिसमे आप प्रथम आये। बाद मे चन्द्रभूषण ने सरकार के ग्राम सुधार विभाग के अधीन देहातों मे ग्राम सुधार का कार्य किया। इस कार्य में आप की इतनी लगन थी और आप इतने परिश्रमी थे कि सम्पूर्ण कमिश्नरी मे आप का केन्द्र प्रथम आया और आपको 'गवर्नर सर हैरीहेग शील्ड' प्राप्त हुई थी। इस समय आप पिछले कई वर्षो से आल इंडिया रेडियो के लखनऊ केन्द्र मे कार्य कर रहे है और ग्रामीण जनता के लिए प्रसारित होने वाले कार्यक्रम

के संचालक है।

चन्द्रभूषण ने जब से कविता लिखना आरम्भ किया तभी से उनका प्रकाशन भी शुरू हो गया था। आपकी सब से पहली कविता पंडित गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही" के सम्पादकत्व में कानपुर से प्रकाशित होने वाली 'सुकवि' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'सुकवि' नये-नये कवियों की रचनाओं को प्रकाशित करने तथा उन्हें प्रोत्साहन प्रदान करने में सदा अग्रणी रहा है। बाद में चन्द्रभूषण जी की कवितायें माधुरी, नयायुग, हंस, हल, प्रतीक आदि सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी, और अब तो आपके दो कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं : "बौछार" सन् १९४४ में और "निनसार" सन् १९४७ में। आप की कवितायें इतनी अधिक लोक प्रिय हुई है कि आप का "बौछार" कविता संग्रह आठ संस्करणों में प्रकाशित हो चुका है। इससे लोक भाषाओं के सरल साहित्य की लोकप्रियता का परिचय मिलता है। इन दो पुस्तकों के अतिरिक्त चन्द्रभूषण द्वारा अवधी भाषा में लिखित हास्य रस के नाटकों का एक संग्रह "रतौन्धी" नाम से और नेता जी सुभाष चन्द्र बोस पर लिखित एक आल्हा भी प्रकाशित हो चुका है। यह दोनों पुस्तकें भी आप की अत्यधिक लोकप्रिय रचनायें है। आपके सभी नाटक लखनऊ रेडियो पर कई-कई बार अभिनीत हो चुके है जिनमें 'रतौन्धी" शीर्षक नाटक तो सर्वाधिक बार खेला जा चुका है। आप के कई नाटक तथा आल्हा रेकार्ड भी हो चुके है। आपके द्वारा लिखित आल्हा को आपके मौसिया स्वर्गीय पंडित दुर्गाचरण त्रिवेदी जो कि विख्यात अल्हैत थे तन्मय होकर गाया करते थे, और सैकड़ों ग्रामीणों की भीड़ आकर्षित कर लेते थे।

रमई काका के अप्रकाशित ग्रन्थों में "धरती हमारि" शीर्षक अवधी भाषा की गम्भीर कविताओं का एक संग्रह और "रजाई का फेटु" शीर्षक हास्य रस की कविताओं का एक संग्रह शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। आपने खड़ी बोली में भी कुछ एकांकी नाटक लिखे है।

रमई काका के मत में महाकवि संत तुलसीदास सर्वोच्च कवि है, क्योंकि उन्होंने जीवन और भक्ति की संयुक्त पयस्विनी प्रवाहित की और वे आज भी घर-घर में बसे हुये हैं। (बसे घर घर मां तुलसीदास, सिखावैं धरम करम आचार) आप कहते हैं कि—"जो साहित्य जनता के हृदय को आकर्षित करे, जो जन मन का मंगल करे, जिसकी अधिक से अधिक व्यापकता हो, मैं उसी साहित्य के पक्ष में हूं। तथा, यदि काव्य में नया प्रयोग हो तो वह भी सभी के प्राणों से अनुप्राणित होना चाहिये।" जीवन के प्रति आप का दृष्टिकोण व विचारधारा यह है कि "कवि को आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहिये।" आप किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्धित नहीं है।

रमई काका कवि के लिए जिस आदर्श जीवन को व्यतीत करना आवश्यक मानते है उसका मुख्य तात्पर्य यही है कि कवि को सक्रिय राजनीति से पूरी तरह से बच कर या अलग रहना चाहिये। किन्तु साहित्य के प्रति यह एक गैर-प्रगतिशील दृष्टिकोण बन जाता है। साहित्य संस्कृति, राजनीति सभी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन से होता है और सब पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ता है। हम साहित्य या साहित्यकार को राजनीति या उसके प्रभाव से अलग नहीं रख सकते। साहित्य को आज राजनीति से अलग रखने का नारा वही लोग लगाते है जो समाज में शोषण और दुख दैन्य को बनाये रखना चाहते है। युग और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों के लिए सजग व्यक्ति ऐसा दृष्टिकोण नहीं रखता। आज राजनीति तो हमारे जीवन की नस नस मे व्याप्त है। फिर भला आज की कविता उसके प्रभाव से मुक्त कैसे रह सकती है। वर्गगत समाज मे साहित्यकार किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधि होता है और उसके साहित्य मे उस वर्ग की राजनीति व अर्थनीति का प्रतिबिम्ब होता है। वर्गगत समाज में साहित्य को राजनीति से मुक्त रखना समाज मे वैषम्य की रक्षा करना है। यद्यपि चन्द्रभूषण कवि और कविता को राजनीति से अलग रखने की बात सोचते है, किन्तु स्वयं उनकी रचनायें ही वर्ग

विशेष का प्रतिनिधित्व करती हैं और उनमे राजनीति के स्पष्ट स्वर हैं।

रमई काका एक किसान कवि है। उनके समस्त साहित्य में हमें भारत के अपढ़, निश्छल किसान के दो स्वरूप देखने को मिलते है : एक तो अपने अधिकारों के प्रति सजग, विद्रोही किसान का स्वरूप और दूसरे पूँजीवादी सभ्यता तथा पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से आश्चर्य चकित किसान का रूप, जो खुल कर उसकी मखौल उड़ाता है। रमई काका का पहला स्वरूप हमे उनका गम्भीर रचनाओं मे देखने को मिलता है और दूसरा स्वरूप उनकी हास्यरस की कविताओं में। गम्भीर रचनाओं मे रमई काका किसान के जीवन के दुख-दैन्य और उत्पीड़न का यथार्थ-वादी चित्रण करके अधिकारों की आवाज लगाते है जिसका प्रमाण उनकी "धरती हमारि" शीर्षक कविता है और अपनी हास्यरस की कविताओं में विदेशी एव शहरी सभ्यता के खोखले, बनावटी, रसहीन और जीवन विरोधी स्वरूप पर कठोर कटाक्ष तथा व्यंग कसते हुए उसका मखौल उड़ाते है और ग्रामीण जीवन के कुछ अन्धविश्वासों और रूढ़ियों की भी धज्जियाँ उड़ाते है।

किन्तु रमई काका की समस्त रचनाओं की महान विशेषता यह है कि उनमे हमें भारतीय किसान के हृदय, मनोभावों और दृष्टिकोण का अत्यन्त वास्तविक और यथार्थ स्वरूप देखने को मिलता है जो हमें हँसाता भी है, और तिलमिला भी देता है। एक ओर हमें उनकी कविताओं में अन्नदाता के उस ओजस्वी रूप के दर्शन होते है जो जेठ की तपती दोपहरी और माघ-पूस की वर्फीली रातों मे धरती का कलेजा चीर कर सोना उगाता है और उसकी रक्षा करता है तथा अपने खेतों को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। और दूसरी ओर हमे उस अपढ़, गंवार, रूढ़िग्रस्त किसान के दर्शन होते है जो महाजन से पचास रुपये कर्ज लेकर ढाई सौ रुपये पर अपना अंगूठा लगा देता है और बाद मे शहर की कचहरियों मे न्याय की आशा लेकर अपनी समस्त पूँजी और प्राण गवां देता है; हमे उस दीन-दुखी किसान का स्वरूप भी देखने

को मिलता है जो नौकरी की तलाश मे नगे पैर, फटे चीथड़े लपेटे शहरों की पक्की सड़कों की धूल चाटता फिरता है, साहबों और मेमों की दुतकार-फटकार सहता है और उनके पालतू कुत्तों से भी गया बीता जीवन व्यतीत करता है; हमे उस किसान के स्वरूप भी देखने को मिलते है जो 'दिशाशूल और साइत-कुसाइत' के विचारों में बुरी तरह से जकड़ा हुआ है, जो दहेज और विवाह की पुरानी प्रथाओं की चक्की मे पिस रहा है, जो तमाखू, बीड़ी, दोहरे आदि मे धन अपव्यय कर समय और शक्ति की हत्या करता है और जिसके घर की औरते परदा प्रथा आदि अन्ध-विश्वासों मे बुरी तरह से जकड़ी हुई है। और इन सब के अतिरिक्त हमे चन्द्रभूषण की रचनाओं मे देहातों और खेतो के प्राकृतिक वैभव तथा सौन्दर्य-सुषमा के भी बड़े चित्ताकर्षक चित्र देखने को मिलते है। उनकी अनुभूति बड़ी पैनी है और कलात्मक चित्रण मे सिद्धहस्त।

इन सबसे भी अधिक रमई काका की सबसे बड़ी विशेषता है उनके काव्य की भाषा। उन्होंने लोक भाषा अवधी मे, विशेषतया बैसवाड़े की अवधी मे, साहित्य रचना की है और इस अभिजात गीय सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ा दी हैं कि आज लोक भाषाओं मे उत्कृष्ट साहित्य की रचना नहीं हो सकती। पूँजीवादी भाषा शास्त्री यह मानते है कि जन-बोलियों मे साहित्य नहीं लिखा जाना चाहिये। साहित्य की भाषा बोल चाल की भाषा से भिन्न तथा ऊँचे स्तर की होनी चाहिये, क्योंकि जन-भाषा मे गवारूपन होता है। किन्तु रमई काका का मत इससे पूर्णतया भिन्न है। उन्होंने अपने प्रथम कविता संग्रह "बौछार" के प्राक्कथन मे लिखा है: "जब जनता के विचारों मे कुछ परिवर्तन तथा क्रांति कराने की आवश्यकता होती है तो लोक भाषा का ही आश्रय लेना पड़ता है।" बात अक्षरशः सत्य है। यदि हमे मजदूर-किसानों के दिल मे घर कर के बैठना है तो हमे उनकी ही भाषा मे उनके लिए साहित्य लिखना होगा, जिसमे उन्ही के जीवन की सच्ची झाँकी हो। तभी वे अनुप्राणित और आन्दोलित हो सकते हैं। हमारी ग्रामीण बोलियों तथा लोक भाषाओं

मे ऐसे तमाम शब्द-रत्न भरे पड़े हैं जो खड़ी बोली हिन्दी में ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते और जिनके अपनाने मे हिन्दी की समृद्धि हो सकती है। लोक भाषाओं मे शब्दों की रचना प्रकृति और वास्तविक जीवन के निकट सम्पर्क से होती है और वे ध्वनि, अर्थ तथा भाव मे एक रस और पूर्ण होते है। लोक भाषाओं के शब्दों, मुहावरों और कहावतों मे प्राण और शक्ति होती है और वे अपने दायित्व तथा कार्य को भली भाँति निभाते है। इसीलिए रमई काका ने अवधी को अपने काव्य की भाषा चुना है और ऐसा उन्होंने बड़ा सोच समझ कर किया है। उन्होंने अपने दूसरे कविता संग्रह "भिनसार" के प्राक्कथन मे लिखा है कि, "राष्ट्र की उन्नति के लिए ग्रामोद्धार की आवश्यकता है और राष्ट्र भाषा की उन्नति के लिए लोक भाषाओं का उद्धार करना होगा। लोक भाषाओं के विकास से भिन्न भिन्न जातियों के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विकास का अवसर मिलेगा। यदि सभी लोक भाषाओं के क्षेत्रों मे नवीन विचारों के अंकुर पनप उठें तो नवयुग के निर्माण मे सुविधा हो और राष्ट्र भाषा का कोष बहुमूल्य शब्द रत्नों से भर जाय।" रमई काका के इन वाक्यों मे सामयिक चेतावनी और महान सत्य है। राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रेमियों को इस गम्भीर सलाह पर ध्यान देना चाहिये।

रमई काका ने प्रथमतः हास्यरस में कविता लिखना आरम्भ किया था। बाद मे अपनी काव्य प्रतिभा के विकसित तथा पुष्ट होने पर उन्होंने गम्भीर रचनाएँ भी लिखना शुरू किया और डाक्टर रामविलास शर्मा के शब्दों मे "चन्द्रभूषण जी को हास्य रस तथा गम्भीर दोनों ही तरह की रचनायें करने मे वांछनीय सफलता मिली है।" लखनऊ विश्व-विद्यालय के डाक्टर भगीरथ मिश्र ने आपकी हास्यरस की कविताओं पर लिखा है कि : "शब्दों मे, मुहावरों के प्रयोग मे, यथार्थ भाव प्रकाशन के लिए प्रयुक्त उपमाओं और पात्रों की वेशभूषा, बोली, विश्वास, चेष्टा क्रिया-कलाप, व्यवहार आदि मे जो हास्य रस वे (रमई काका) देते है वैसा हमारे साहित्य मे कम सुलभ है। वह मन को स्वच्छ करता है और

हृदय के मैल को दूर भगा देता है।"

किन्तु रमई काका की हास्य रस की रचनाओं में एक भारी दोष भी है। यद्यपि उन्होंने शहरी, पूंजीवादी अथवा पाश्चात्य सभ्यता की जी भर कर मखौल उड़ाई है किन्तु दूसरी ओर उनसे ऐसी प्रतिध्वनि निकलती है मानो वे हमारे ग्रामीण जीवन की जड़ता, स्थिरता और गन्दगी का समर्थन करती है। कम से कम इतना तो अवश्य ही है कि उनकी हास्य रस की रचनायें साधारण पाठकों या श्रोताओं में अपनी मुर्दा प्राचीन सभ्यता, संस्कृति के प्रति एक अवांछनीय मोह और सहानुभूति उत्पन्न करती है। और इस माने में हम कह सकते है कि वे प्रतिक्रियावादी विचारधारा को प्रोत्साहन देती है। डा० रामविलास शर्मा ने भी स्पष्ट लिखा है कि, "हास्य रस की कुछ रचनाओं मे वे एक ग्राम निवासी के दृष्टिकोण से नयी सभ्यता पर भी बौछार करते है। ऐसी रचनाओं में एक दोष यह आ जाता है कि वे अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण अन्ध विश्वासों का समर्थन करता है। जहां हम पूंजीवादी संस्कृति की अतिशयता और उसकी विकृति का विरोध करते है, वहाँ हम ग्रामीण अन्ध विश्वासों को भी शीघ्र ही दूर करना आवश्यक समझते है।"

"बौछार" कविता संग्रह में बुढऊ का बियाह, अनमेल, यह छोछा-ल्यादरि याखोती, पहिल नौकरी, साहेब ते भ्यांट और लखनऊ में चार धोखा शीर्षक कवितायें तथा "भिनसार" कविता संग्रह में संयोग कै बात, रहीस के नौकरी, तोंदु, पेट कै पीर, सहर कै बात, चलन, सान-पताह, पिल्लू, उल्लू तथा ढाई हजार शीर्षक कवितायें रमई काका की विख्यात तथा उच्च हास्य रस की रचनायें है। इन कविताओं में शब्दों, मुहावरों और कहावतों के प्रयोग ने हास्य का चमत्कार कई गुना बढ़ा दिया है। साथ ही इन में पूँजीवादी सभ्यता पर कटु व्यंग भी है, उदाहरण के लिए:-

मेम साहब कै सुनौ हवाल, चलैं उइ अउरौ उलटी चाल
न साहेब ते सूधे बतलायं, गिरी थारी अइसी झन्नांय
कबौं छुउंकनु जइसी खररूयाएं, पटाका अइसी दगि दगि जायं

करैं सरकार डकदरी जायं, अकेले मा तब मगन दिखाय
फून मां कोहू ते बतलायँ, कोयलिया मिठ बोलनी होइ जायँ
अथवा-बात बात मा आंगन मा लरिकउनू गरजें बादरु असि
बहुरेवा तड़पै बिजुरी असि, हम कहा यहौ संजोगु बना
अथवा—गई रही सहरै सो देखि लीन मेमन का
टोपी देती अइसी जैसी अपनी कठौती है
सूपनखा केर जइसे नख रहैं बड़े बड़े
सहर मां तैसे भलेमंसिनी रखौती है
जैसे महाउर हम लातन लगाइत है
तैसे लाल लाल हुवाँ ठ्वांठन लगौती है
अथवा-हियां का सघो कोऊ का हेतु घूसि जहं कूकुर तक लइ लेत
अथवा-जब गयेन तुमाइसि द्याखै हम जहँ कक्कू भारी रहै भीर
दुई तोला चार रुपइया के हम बेसहा सोने के जंजीर
लखि भई घरतिन गलगल बहु, मुलु चार दिनन मा रंगु बदला
उन कहा कि पीतर लइ आया, हम कहा बड़ा धोखा होइगा

हास्य रस के अतिरिक्त रमई काका की रचनाओं मे उनकी काव्य कुशलता का चमत्कार प्रकृति चित्रण मे देखने को मिलता है। उनकी कविताओं मे प्रकृति के चित्र बड़े वास्तविक और प्राणवान मिलते है तथा उनमे एक किसान का अध्ययन और दृष्टिकोण होता है। हमे उनमे मिट्टी की सोंधी सुगन्ध, खेतों से उठती हुई खुशबू और आम, ढाक, करोंदा, नीम आदि की महक मिलती है। "गउधूरि" शीर्षक कविता मे प्रकृति का मार्मिक चित्रण देखिए—

साँझ हउलें आइ भुइं पर
जालु किरनन का सोनहरा जो रहै फइला जगत पर
सैंति कैघर सुरुज चलिभे थकिन दिन के छाइ तन पर
आखिरी तिनु दाबि चिरिया लइ चली अपने बिरिछ पर
फूल भुम्फन ते ममाखी घूंटु पाछिल चुहुकि हरबर

हैं चली अपने छता का देखि कै अँधियारु सिर पर
कांध पर धरि हरिस माची घर चला लखि सांझ खेतिहर

वर्षा ऋतु का चित्रण देखिए—

रस भरे बदरवा घुमड़ि घुमड़ि मानौ गुलाबु किन्छें भुई पर
बदरिन के कोछें ते छिरका माती का चूरा झर झर झर
घर घर किसान होइगे गलगल मन बिरवा थिरकें झूम झूम
आंगन मां लरिका कुलकि रहे तुलसी कै गछिया घूमि घूमि
हन्ना अस कूदि रहे बछरा, नान्ही पड़िया पुड़क्याय रही
होई मगन कलोरी वासर औ गइया भइंसी कुड़िलाय रही

चरागाह की बन सुषमा देखिये—

पात पर हैं पात बरगे जह हरेरी छिउलियन मा
सुरुख कुंदरू खाय बुलबुल सुघर छहंगर मंडफन मां
बहु मकोइया बनफती जहँ नील मोती अस फरी हैं
किधों नीलम नगन गछिया मकोइन की जड़ी हैं
फलहरे ललछर करउदन घुंघचियलिन के गुम्फा सोहैं
गुरुच बउड़ी प्रेम डोरिन बाँधि बिरछन का बिमोहैं

इसी प्रकार "सरद जुन्हइया" शीर्षक कविता मे चाँदनी रात का दृश्य देखिये—

संझा नभ के कोने मइहाँ है लाल नखतु लइकै आई
जेहिमा नखतन के आभूषण है जगमग जगमग भरि लाई
मानौ अकास ते दूधु गिरा, की दही जुन्हैया ढरकावा
कैधों यू सूधा सुधाकर का गा ढरकि जगत मा बहि आवा
चाँदी की चटकी किरनन का यू बिना बसुनु जग पर फइला
कैधो नभ मा है उलटि परे परकास चूर के सब थइला

प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त रमई काका की कविताओं मे ग्राम्य जीवन की भी बड़ी सुन्दर और वास्तविक झांकियां दिखाई देती हैं जो मन को मोह लेती है और लगता है जैसे हम स्वयं किसी गाँव मे, खेत

मे या खलियान मे खड़े अपनी आँखों से सारा दृश्य देख रहे है। कभी वे खलियान में अपने कन्धे पर अपना लड़का बिठाये किसान स्त्री द्वारा गल्ले की मड़नी का चित्र उतारते है और कहते हैं—

लरिकउना लीन्हे काँधे पर बहुरेवा मड़नी माड़ि रही

अथवा— जेठ दुपहरिया में लूक कै बयरिया
देहिया उघारे माड़े मड़नी किसनवा

और कभी वे गांव मे फूस के छप्पर से घिरे कच्चे आंगन मे अपनी गोद मे अपने शिशु को लिए कृषक बाला का सौन्दर्य चित्रित करते है और कहते है—

घरैतिन ललना लीन्हें गोद खड़ी हैं अँगना लट छुटकारि
घरैतिन रही नेहु न्यउछारि जोन्हइया हंसि-हंसि रही निहारि

और तभी वे किसी ग्रामीण स्त्री के वात्सल्य और श्रद्धा को इन शब्दों मे चित्रित करने लगते है—

घर घर सोन कै जोति जरी पुरखिनी हाथ मा दीप लिये
आंगन की तुलसी मइया ढिग लइ आई आँचर ओट किए
सद्भाउ सहित आरति कइकै गभुवारे लरकन तन आई
जो दिया देखि कै कुलकि परे पुरखिनी देखि कै हरसाई
पुचकारि प्रेम ते चुटकी दइ अँगन पर दीप उतारि रही
कोउ अनभल चेतुवा की कुदीठि का सब परभाव निवारि रही
आंखनि मां काजरु रांजि-रांजि माथे पर थापि रहीं टीका
संझा मइया ते विनय करैं यहु लालु रहै नीका नीका

रमई काका के इन सभी चित्रों मे कितनी सजीवता और मार्मिकता है। किन्तु इसके साथ ही साथ किसान की दीन दशा और शोषण को देख कर वे अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो उठते हैं और विद्रोही किसान की भांति उदात्त स्वरों में कहते है—

धरती हमारि, धरती हमारि

तब वे किसान और धरती के आत्मबल, शक्ति और विश्वास के राग

गाने लगते है। वे कह उठते हैं—

हम पैसरमी हलधर किसान

अथवा–हम अपनी छाती के बल ते धरती मा फारु चलाइत है

माटी क नान्हे कन कन मा हम ही सोना उपजाइत है

अपने लोनखरे पसीना ते ग्याती मा ख्यात बनावा हम

मुरदा माटी जिन्दा होइग जह लोखर अपन छुवावा हम

तभी तो किसान को अपने खेत अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे है। खेत के प्रति एक किसान की भावना को रमई काका इन शब्दों में व्यक्त करते है—

ख्यात प्रान समान हैं ई

सुरज जिनमा सोनु नावत, चन्द है चांदी गिरावत

देत रोजु अकाश मोती, कैस महिमावान हैं ई

इसीलिए आज का विद्रोही सबल, सशक्त, संगठित किसान ललकार उठता है—

कोउ विदेसी निकट आई, टेढ़ि नजरिन हक जनाई

तौ गदौरी पर धरे बसि देखि लीन्हौ प्रान है ई

ख्यात ई रन ख्यात होइ हैं ढ्याल होई अंगार जरि हैं

तिलु तलक यह भुइं न जाई, जब तलक तन प्रान हैं ई

रमई काका के इन शब्दों मे आज के भारतीय किसान का दृढ़ निश्चय, त्याग, बलिदान, पराक्रम और शोषण से मुक्त होने का विश्वास बोलता है। इस प्रकार रमई काका ने अपनी तमाम कविताओं मे किसान, खेत, अनाज और गाँव की महिमा गाई है। और वे यह आशा लगाये बैठे है कि—

हम निरखित खड़े अंधेरे मा लछिमी जी तन आशा लगाय

धुलि जाय अंधेरु उजेरे मां सारा जगु एक सां जगमगाय

तभी वे प्रत्येक भारतवासी से कहते है—

समसरि कइके सब धरती विषम पुरानी

पूरहु रे, मंगल चौक विस्व कल्यानी
लछिमन रेखा का खेंचि देहु प्रतिबन्धन
जेहिमा हरिके लइ जाय न लछिमी रावन
सब जन मिलि थापहु कलस अमंगल हारी
जेहि पर आंकौ निज कला सभ्यता सारी

रमई काका की इन पंक्तियों मे किसानों के प्रतिनिधि एक जनवादी कवि का स्वरूप झलकता है। रमई काका ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अन्योक्तियों के रूप में भी कुछ अत्यन्त सुन्दर रचनायें लिखी है जिनमे "भिनसार" कविता संग्रह की खटमल, बिलाइती बहुरिया, पाहुन आदि कवितायें प्रमुख है।

रमई काका की रचनाओं मे हमे स्थान-स्थान पर ग्रामीण कहावतों और मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग दिखाई देता है, उदाहरण के लिए : चलनी मा दुहिकै दरकायो, विद्यापढ़ि आँखी चार करौ, नौ कै लकरी नब्बे खर्च, रुपिया करै सरग मां राह, निबल कै जोय गांव भरे की सरहज होय, रेति पेरि निकारै तेलु, उइ बेलि बेलि सब बेलि दिहिन, जो सांपु बनावै लत्ता ते, आदि। रमई काका ने उपमाओं का प्रयोग भी बड़े चुभते और सजीव ढंग से किया है, उदाहरणार्थ—पीपर पत्ता अस डुवाला मनु, उइ उछरैं जस चाउर भुजिया, आदि। रमई काका की महत्वाकांक्षा है कि "वे काव्य साधना द्वारा जनता जनार्दन की सेवा कर सकें तथा जीवन के उच्च आदर्शों को प्राप्त कर सकें।" उनमे लक्ष्य प्राप्ति की पर्याप्त क्षमता है।

१०

बलवीर सिंह 'रंग'

"कविता को मैं जीवन से किसी भी शर्त पर अलग नहीं रख पाता हूँ। और पददलित मानव को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में जो कविता योग नहीं दे पाती वह जनता जनार्दन के मन-मंदिर में प्रतिष्ठित होने की अधिकारिणी नहीं हो सकती।......

"जन-जीवन के संघर्ष, उसके हर्ष-विषाद और उसके अभावों को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करना ही साहित्य का धर्म होना चाहिए।"

बलवीर सिंह 'रंग',
कटीला नगला,
डाकखाना—बेहटा,
जिला—एटा (उ० प्र०)

★

"कवि पैदा होते हैं, बनते नहीं है" इस पुरानी कहावत को अपने ऊपर चरितार्थ करने वाले बलवीर सिंह "रंग" नयी पीढ़ी के ख्याति नामा कवि है। वे मुख्यतः रोमान्स और प्रणय चित्रण के गीतकार हैं जिन्होंने बच्चन के बाद प्रणय गीतों को एक नयी शक्ति और दिशा प्रदान की है। उन्होंने निराशा और आत्म समर्पण के स्थान पर आशा, विश्वास, आत्मबल और एक प्रकार की ओजस्विता का चित्रण किया है, जिसमे वासना का लिबलिबापन नहीं है।

बलवीर सिंह 'रंग' का जन्म अगहन, कृष्णपक्ष सप्तमी, सम्वत् १९७६ को चौहान राजपूत वंश के एक साधारण किसान परिवार मे उत्तर प्रदेश के एटा जिले मे स्थित कटीला नगला नामक छोटे से गांव मे हुआ था। यद्यपि उनकी वंश परम्परा का सम्बन्ध पृथ्वीराज चौहान के वंश से बताया जाता है, किन्तु कई पीढ़ियों से उनके परिवार तथा पूर्वजों ने तलवार की मूठ त्याग कर हल की मूठ पकड़ ली थी। तब से खेती-बारी करनी ही उनका मुख्य रोजगार रहा है। बलवीर सिंह के पिता ठाकुर गुलाब सिंह चौहान भी, जिनका देहान्त गत २२ नवम्बर, १९५२ को हुआ है, एक किसान थे। बलवीर सिंह का बचपन भी खेत की मचानों और मेड़ों तथा उपलों के ढेरों के आस पास खेल कूद कर ही बढ़ा है। और जैसे ही वे समर्थ हुए उन्हें भी बैलों की जोड़ी लेकर तथा कंधे पर हल रख कर अपने बड़े भाई के साथ खेतों पर जाना पड़ा। शिक्षा के नाम पर उन्होंने कभी किसी पाठशाला या मदरसे के भीतर कदम नहीं रखा। इस देश के करोड़ों निर्धन किसानों की अभागी सन्तानों की भांति

वे भी सदा ही शिक्षा से वंचित रहे। केवल घर पर ही उन्हें लिखने-पढ़ने लायक अक्षर-ज्ञान करा दिया गया था। उनके परिवार में कभी किसी को स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि एक दिन बलवीरसिंह साहित्य रूपी खेत मे अपनी लेखनी का हल चला कर लहलहाते हुए गीतों की पौध उगाकर उनके परिवार, गाँव और जिले का नाम रोशन करेंगे।

एटा जिला कत्ल और डकैतियों के अपराधों के लिए विख्यात है। बलवीर सिंह जिस समय ११, १२ वर्ष के किशोर थे उनके पिता को इसी प्रकार के एक अपराध में आजीवन कारावास की सजा हो गई। बलवीर सिंह के परिवार पर जैसे वज्र टूट पड़ा। छोटे-छोटे बालकों को देखने सुनने वाला भी कोई न था। तभी घटनावशात् अपने गाँव के निकट गोस्वामी तुलसीदास के जन्म स्थान गंगा तट पर बसे हुए सोरों नामक तीर्थ के एक मेले से बालक बलवीर एक राज्यगुरू के साथ एक रियासत के शाही ठाट-बाट के बीच पहुंच गए, जहाँ वे लगभग चार वर्ष रहे। उन्हीं दिनों वहाँ के राज घराने की राजकन्या से उनका प्रणय सम्बन्ध हो गया। किन्तु राजा साहब का कोपभाजन बनने की वजह से वे सदा के लिए उस राज्य से निष्कासित कर दिए गए और वह प्रणय बन्धन एक कहानी बन कर रह गया।

किन्तु यही वह मुख्य घटना थी जिसने बलवीर सिंह के हृदय में कविता को जन्म दिया। उन्होंने स्वयं अपने कवि होने का कारण बतलाते हुए कहा है कि : "राज्य परिवार की कन्या से प्रेम के, जिसकी पूर्ति सर्वथा असम्भव थी, दो ही परिणाम हो सकते थे, मै या तो कवि बनता या पागल।" फिर उन्होंने आगे हंसते हुए यह भी जोड़ दिया था कि— "मैं पूरी तरह से पागल तो न बन सका, किन्तु आधा पागल यानी कवि अवश्य बन गया।" रंग जब १४, १५ वर्ष के थे तभी उन्होंने कविता लिखना आरम्भ किया था। वे सन् १९३४, ३५ के दिन थे। उनकी कविता सबसे पहली बार एटा के साप्ताहिक सुदर्शन में सन् १९३७ मे प्रकाशित हुई थी। तब से वे अब तक कुल लगभग पांच सौ गीत व कवितायें लिख चुके हैं और उनके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके

है : 'प्रवेश गीत' सन् १६४० में, 'सांझ सकारे' सन् १६४४ में और 'सगम' सन् १६५० में। इसके अतिरिक्त ५० गीतों का एक अप्रकाशित संग्रह भी उनके पास है, और "चित्रशाला" नाम से देश के नेताओं पर गीत-चित्रों का एक अन्य अप्रकाशित संग्रह भी, जो सर्वथा नया और अनूठा अवदान है। रंग की कवितायें अक्सर पाठकों को सरिता आजकल, हिन्दुस्तान, वीर अर्जुन आदि पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिला करती है।

गीत लिखने में रंग ने बच्चन के बाद अपना एक विशेष स्थान बनाया है। उनके गीत साधारण और विज्ञ दोनों प्रकार के पाठकों तथा श्रोताओं को लुभाते और प्रभावित करते हैं और उन्हें साधारण जनता के साथ ही उच्च अफसरों व बड़े लोगों तथा विद्वद् जनों सभी के बीच समान रूप से सम्मान का गौरव प्रदान करते है। नयी पीढ़ी के गीत-कारों में जितना अधिक रंग कवि सम्मेलनों मे लोकप्रिय हुए है उतना अन्य कोई नहीं। उनकी सफलता और काव्य प्रतिभा के प्रति उत्तर प्रदेशीय सरकार ने भी उनके "संगम" काव्य संग्रह पर पांच सौ रूपये का पुरस्कार देकर अपना सम्मान प्रदर्शित किया है।

यद्यपि रंग ने नियमित रूप से किसी पाठशाला में शिक्षा ग्रहण नहीं की है किन्तु उन्होंने स्वाध्याय द्वारा हिन्दी साहित्य का पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया है। उन्हे आधुनिक कवियों में युगप्राण निराला ने सबसे अधिक प्रभावित किया है क्योंकि उन्हीं के शब्दों मे "वे कविता को जीवन के अत्यन्त निकट लाने में समर्थ हुए हैं।" पुराने कवियों में रंग तुलसी को महान मानते है और कहते हैं कि—"उन्होंने उस समय के संक्रांति काल में भी शासन और समाज के प्रभाव से मुक्त रह कर जन-जन की बात उसी की भाषा मे निर्भीक हो कर कहने मे सफलता प्राप्त की।"

जीवन के प्रति रंग का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और मानववादी है। उनका कहना है कि "जियो और दूसरों को जीने दो।" किन्तु वे

रूढ़िगत संस्कारों तथा अध्यात्मवादी विचारधारा में पूरी तरह से जकड़े हुए है। वे नवीन विश्व और उसकी विराटता तथा विभिन्नता को भली भांति पहचान नही पाये हैं। तभी वे पुरातन के मोह को त्याग नहीं पाते। उन्होंने स्वयं लिखा है कि : "पुरातन अध्यात्मवादी विचारधारा को मै अपने जीवन के अधिक निकट मानता हूँ।" पर वे यह भी कहते है कि, "कविता को मै जीवन से किसी भी शर्त पर अलग नही रख पाता हू और पद दलित मानव को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने मे जो कविता सहयोग नही दे पाती वह जनता जनार्दन के मन मन्दिर मे प्रतिष्ठित होने की अधिकारिणी नहीं हो सकती।" साथ ही रंग फिर कहते है कि, "जन जीवन के संघर्ष, उनके हर्ष-विषाद और उनके अभावों को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करना ही साहित्य का धर्म होना चाहिए।" कोई समझदार व्यक्ति रंग के इन कथनों पर भिन्न राय नहीं रखेगा। किन्तु प्रश्न तो यह उठ खड़ा होता है कि रंग ने क्या स्वयं इन परिभाषाओं का पालन किया है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यदि हम उनकी रचनाओं पर दृष्टि डाले तो निराशा ही हाथ लगती है।

रंग ने अपने साहित्य मे जन-जीवन के सघर्ष के बजाय प्रणय का चित्रण ही अधिक किया है। इसका मुख्य कारण यही है कि यद्यपि वे एक साधारण किसान है किन्तु उनके व्यक्तिगत जीवन मे सघर्ष का अभाव रहा है। हालांकि आर्थिक सम्पन्नता का सुख उन्हे कभी नहीं मिला किन्तु उन्होंने कभी उसकी चिन्ता भी नहीं की। फिर भला वे समाज के दुख-दैन्य और निर्धनता का चित्रण क्यों करते? उनका जीवन राजनीतिक भी रहा है। सन् १९३५ से १९४७ तक कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता रहकर उन्होंने उसकी सेवा की है। यहां तक कि सन् १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह अन्दोलन में भाग लेकर चार मास का कारावास भी काटा है। किन्तु देश के विभाजनोपरान्त कांग्रेस के पतन से दुखी होकर वे कांग्रेस से अलग हो गये और अब भारतीय साम्यवादी विचारधारा को समाज और देश के लिए हितकर मानते हैं।

इतना सब होते हुए भी उन्होंने सामाजिक व राजनीतिक आन्दोलनों तथा संघर्षों को अपने काव्य का विषय नहीं बनाया। स्वयं एक हल चलाने और खेत जोतने वाला किसान होते हुए भी रंग ने कभी खेत, मिट्टी, हल-बैल या गांव और किसानों के दुख दैन्य के चित्र नहीं उतारे। इसलिए यदि यह भी कहा जाय कि कवि और कलाकार के साथ ही किसान होने के नाते रंग ने अपने दायित्व और कर्तव्यों को पूरी तरह नहीं निभाया है तो गलत न होगा।

रंग ने अपूर्ण प्रणय-चित्रण से कविता आरम्भ की थी, जिस में दुख और वेदना के स्वर थे। तब वे इस निर्मम जगत को कोसा करते थे। बाद मे उनके हृदय में धैर्य का संचार हुआ तब वे आशा, विश्वास और आत्मबल के गीत गाने लगे। और जब उन्हें अपने मन के मुताबिक अपना जीवन साथी मिल गया (रंग विवाहित हैं और उनके ३ पुत्र और १ पुत्री है।) तब उन्होंने विरह और असफल प्यार को त्याग कर मिलन और संयोग का चित्रण करना शुरू कर दिया। और तब उनके काव्य का स्वरूप भी संवर गया। रंग इसका श्रेय अपनी पत्नी को देते है। वे कहते है कि, "पत्नी मेरी रचनाओं की सबसे बड़ी प्रशंसक और प्रमुख श्रोता भी है।" और इस अवस्था में पहुचकर रंग का कवि, जो अन्तर्मुखी और व्यक्ति में सीमित था, वहिर्मुखी होने लगा और उसने कभी कभी देश, समाज तथा राजनीति की बातें कहनी शुरू की। किन्तु कवि के विकास-काल की यह नवीनतम अवस्था है। रंग मे यह परिवर्तन हाल ही मे आया है। यही रंग के कवि के विकास का अब तक का इतिहास है जो हमे 'प्रवेश गीत' से लेकर 'संगम' तक देखने को मिलता है। रंग मे जो यह नवीन परिवर्तन हाल में आया है उससे सम्बन्धित कुछ गीत और कवितायें 'संगम' कविता-संग्रह के अन्तिम कुछ पृष्ठों में पढ़ने को मिलते हैं। यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि रंग मे यह परिवर्तन देश के विभाजन तथा कांग्रेस के परित्याग के बाद ही आया है।

रंग की काव्यधारा का श्रोत प्यार की अनुभूति के प्रहार से फूटा था और उन्होंने इन शब्दों मे कविता आरम्भ की थी :

प्राणों में कसक रहा जो
वह प्यार नहीं तो क्या है

आगे चल कर कवि ने भांति भांति से अपने इस कसकते हुए प्यार की व्याख्यायें और परिभाषायें की। उसने बताया :

प्यार है वह जो हमें भू से उठा दे
प्यार है वह जो हमें नभ से मिला दे
प्यार है वह जो हमें जीना सिखा दे
प्यार है वह जो सरस जीवन बना दे
पर बिगड़ता प्यार में जीवन नहीं है
प्यार मन बहलाव का साधन नहीं है

(सांझ सकारे)

अथवा : मैं भावुकता को प्यार नहीं मानूंगा
मैं लहरों को मॅझधार नहीं मानूंगा

(संगम)

किन्तु दुर्भाग्य से कवि के जीवन का प्रणय सम्बन्ध केवल मानसिक सम्बन्ध ही बन कर रह गया। वह पूर्ण न हो सका। वह प्रिय से सदा के लिए अलग कर दिया गया। तब वह अपना दुख और अपना विक्षिप्तावस्था अपने गीतों द्वारा जग को सुनाने लगा और साथ मे रह-रह कर वह जग की निष्ठुरता के लिए उसे भी जी भर कर कोसने लगा। अपने दुर्भाग्य पर वह जगत से कहता है :

न छेड़ो मुझे मैं सताया हुआ हूं
प्रकृति के पटल पर नियति तूलिका से
अधूरा बना कर मिटाया गया हूँ

अथवा : पंथ हूँ वह जो किसी से छुट चुका हूँ
पथिक हूँ वह जो स्वयं ही लुट चुका हूँ

वह बवंडर हूं मरुस्थल की हवा का
जो अभावों के गगन में घुट चुका हो
मैं सिसकती मीड़ हूँ, मधुस्वर नहीं हूँ

अथवा— जीवन सरिता में घूमता अभागा भंवर हूँ
जो धार से हो पास पर कगार से हो दूर
मैं देवता की दृष्टि से वंचित प्रसाद हूँ
मजबूरी भरे दिल की अधूरी मुराद हूँ

अथवा-मैंने जीवन के क्षण काटे, मैं मधुमय जीवन क्या जानूं ?

किन्तु इतना होते हुए भी कवि जीवन में कभी निराश नहीं हुआ। उसने सदा ही आशा के गीत गाये। वह जीवन से हारा नहीं। यद्यपि वह यह भली भांति जानता था कि उसका प्रिय उसे कभी मिल नहीं सकता, फिर भी उसने सदा यही कहा कि:—

जानें क्यों तुमसे मिलने की आशा कम विश्वास बहुत है

और इसी विश्वास की वजह से कवि के जीवन में यद्यपि परवशता और घोर निराशा के क्षण आते हैं, किन्तु वे उसे झुका नहीं पाते—

परवशता के पतझड़ में भी मेरे गीत नहीं मुरझाते
घोर निराशा के निर्मम क्षण मुझे हताश नहीं कर पाते

इसीलिए वह अपने समान अन्य दुःखी लोगों को भी देख कर संतोष का अनुभव करता है और अपने मन को बहलाता हुआ कहता है—

मैं ही नहीं अकेला आकुल, मेरी भांति दुखी जन अनगिन
एक बार सबके जीवन में आते गायन-रोदन के क्षण

यही वह संतोष की भावना है जो कवि को सबल और समर्थ बनाती है। वह दुख में रो-रो कर मर जाना नहीं जानता और न अपना रोना सुना कर किसी दूसरे का अहसान ही लेना चाहता है। उसके हृदय में आत्म सम्मान और आत्मबल कूट कूट कर भरा है। वह साफ कहता है—

मैं दुखी हूँ परसुखों का दान क्यों लूँ ?
दान के मिस व्यर्थ का अहसान क्यों लूँ ?

अथवा— मेरा इतना अपनापन था
अहसान जगत का ले न सका
जग की बलि वेदी पर अपने
आदर्शों की बलि दे न सका

यही रंग का ओजस्वी रूप है, जिसने उन्हें यह कहने के लिए विवश किया है—

ओ जीवन के थके पखेरू बढ़े चलो हिम्मत मत हारो
पंखों में भविष्य बन्दी है, मत अतीत की ओर निहारो

तभी उसमे इतना साहस है कि वह अपने निष्ठुर प्रिय से प्रत्यक्ष प्रश्न करता है—

ओ निठुरता की मृदुल प्रतिमा बताओ
ध्यान में कब तक तुम्हारे सिर धुनूं मैं?

अथवा-ओ मेरे आराध्य तुम्हारा निष्ठुर मौन मुखर कब होगा

किन्तु इतने पर भी जब कवि का प्रिय निरुत्तर ही बना रहता है तो कवि फिर उसके आगे गिड़गिड़ाता नहीं है, अपने आप को समर्पित नही कर देता है, बल्कि अपने आत्म सम्मान को प्रदर्शित करते हुए सीना तान कर कहता है—

तुम्हारी भ्रांति से विश्वास मेरा हिल नहीं सकता
तुम्हें मुझसा निरंतर खोजने पर मिल नहीं सकता

तभी तो रंग ने समाज को भी बड़ी शान से बताया है कि—

जग के सौंदर्य सुधा रस का
मैं अनुचित मूल्य चुका न सका
मदमाते यौवन के आगे
निज उन्नत भाल झुका न सका

यही रंग के प्रणयी कवि का सूक्ष्म इतिहास है जो उनके समस्त साहित्य मे व्याप्त है, जिसमें दुर्भाग्य और वेदना के स्वर भी हैं और साथ ही आशा तथा आत्म सम्मान और दृढ़ता के भी। यही उसका गौरव पूर्ण

अंश है। प्रणय के अतिरिक्त रंग ने समय समय पर अपनी अन्य विभिन्न मानसिक अनुभूतियों और विचारों का चित्रण भी अपने गीतों और कवि-ताओं में किया है और इस प्रकार उनका क्षेत्र सदा प्रणय और रोमान्स में बंधा और सीमित नहीं रहा है। रंग पुरातन अध्यात्मवादी विचार-धारा को अपने मन के निकट मानते हैं। इस अर्थ में वे अतीतवादी हैं जो प्रतिक्रियावाद का ही एक स्वरूप है। प्राचीनता का मोह उन्हें इतना अधिक है कि वे कहते हैं—

वह नहीं नूतन कि जो प्राचीनता की जड़ हिला दे
भूत के इतिहास का आभास भी मन से हटा दे
जो पुरातन को नया कर दे
उसे नूतन कहूँगा

शायद रंग या तो पुरानी रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और धर्म के नाम पर होने वाले शोषण और प्राचीन समाज व्यवस्था को नया रूप दे कर बनाये रखना चाहते है या फिर वे नीवनता को भी प्राचीनता के सांचे में ही ढालना चाहते है। किन्तु दूसरी ओर रंग ने यह भी घोषणा की है कि उन्हें धर्म के झूठे आडम्बर स्वीकार नहीं है। उन्होंने कहा है—

किंचित भी मुझको रुचे नहीं मजहब के झूठे आडम्बर
सच तो यह है जब मैं अपनी भावुकता में बह जाता हूँ
तब मन्दिर मसजिद गिरजों को भू भार तलक कह जाता हूँ

किन्तु प्रतीत होता है कि कवि की यह भावुकता ही है। इसमें यथा-र्थता कम है। नारी के प्रति कवि ने अपने भाव इन शब्दों में व्यक्त किए है—

किस पावक की सालोक सजल चपला तुम
शुचि प्रेम पुजारिन जग विजयिन प्रबला तुम
अबला तुमको कह गया कौन अज्ञानी
तुम आई जग कल्याण हेतु कल्याणी

और जब कवि को सुयोग्य जीवन साथी मिल गया तब पहली बार

उसे अपने जीवन मे मिलन का सुख प्राप्त हुआ और उसे अपना स्थिर जीवन गतिमान मालूम देने लगा। इस अवस्था को पहुँच कर कवि की दृष्टि वहिर्मुखी होनी शुरू हुई। जब तक उसके अपने जीवन मे दुख और सन्ताप था तब तक उसे देश और समाज की कोई चिन्ता न थी। जब वह दुख दूर हो गया तब उसने बाहर आस पास देखना शुरू किया और तब उसे कर्तव्य बोध हुआ। फिर उसने लिखा—

नाम के नारे छोड़ो आज देश के लिए काम कुछ करो
करो या मरो

अथवा—किसी तरह भी करो राष्ट्र को बन्धन हीन करो
मानवता की शपथ मनुज को क्रन्दन हीन करो

अथवा— जगत में जनहित हेतु जियो

कवि ने देश मे गुलामी की यातनायें देखी, बेबसी में मरती हुई जनता को देखा, साम्प्रदायिक फूट और वैमनस्यता को देखा जिसका स्वयं उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। और तब मानवता की शपथ दिलाने के बाद रंग कामना करने लगे—

अब न सहन बेबसी की यातना
अन्त स्वयं कर रहा सृजन की साधना
आदमी का काल आज आदमी बना
एक दूसरे से आज हो रही घृणा
आदमी को आदमी का प्यार चाहिये

तब रंग अपने कवि से कहने लगे—

कवि अब तो युग के जीवन को नूतन गति दे दो
वही अमर कवि जो कि समय को चिरनूतन गति दे दे
जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्ति के लिये विमल मति दे दे

जब देश को आजादी मिली तो उसके साथ आने वाली बरबादी को देख कर कवि का मन क्षुब्ध हो उठा। उसके हृदय से करुणा विगलित स्वर निकल पड़ा—

शान्ति मर मिटी, क्रोध जी गया
दलगत बैर विरोध जो गया
माँ की छाती फटी पयोधर की दो धारें हुईं
देश में दो सरकारें हुईं

एक सम्प्रदायवादी की भाँति भावुक कवि के दुखी हृदय ने देश के विभाजन को स्वीकार नहीं किया। उसने कहा—

रवि का कहीं प्रकाश बटा है? क्या अखंड आकाश बटा है?

इसीलिए विभाजन के बाद देश मे साम्प्रदायिक दंगों की जो सर्व विनाशिन आग लगी उसकी वजह से रंग इस आजादी को ही झूठी मानने लगे। उन्होंने कहा—

आज देश ने स्वतन्त्रता का बरबस दान लिया
अथवा—हँसता है विध्वंस धरणि पर अम्बर में निर्माण रो रहा

तभी रंग ने कहा—

अब भी युग के परिवर्तन में थोड़ी सी देर है
शोषण का जीवन के पोषण से मेल नहीं होगा
वैभव के हित उत्थान पतन का खेल नहीं होगा
विप्लव के खुले निमंत्रण में थोड़ी सी देर है

इसीलिए रंग ने कभी इस आजादी को वास्तविक नहीं माना। उन्होंने लिखा—

बुझती हुई राख में अब भी
दबे हुये अंगार सजग हैं

तभी वे देश के कांग्रेसी नेताओं को बारबार चेतावनी देते हैं—

ओ विप्लव के थके साथियो विजय मिली विश्राम न समझो
आहत अन्तर के पल भर की राहत को आराम न समझो
जब तक सुख के स्वप्न अधूरे तब तक पूरा काम न समझो

इसीलिए वे इन नेताओं को सौगन्ध दिलाते है—

बीत न जाय बहार मालियो मधुबन की सौगंध

उतर न जाय खुमार साथियो यौवन की सौगंध
पथ के बनो न भार पंथियो कण कण की सौगंध

किन्तु रंग के इन विचारों और दृष्टिकोण मे सब से बड़ा दोष और दुर्बलता यही है कि वे जंग लगे औजारों से ही काम लेने की आशा लगाये बैठे हैं। एक ओर तो वे इस आजादी को अवास्तविक मानते हैं तथा देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और उत्पीड़न से दुखी हैं, किन्तु दूसरी ओर वे उसी से दवा मांगते हैं जिसने बीमार बनाया है। उन्हें अब भी देश की पतनशील राष्ट्रीय नेता मंडली से बड़ी बड़ी आशायें हैं। किन्तु यह रंग का महान भ्रम और मृग मरीचिका ही है।

दूसरा दुर्भाग्य यह है कि रंग की कविता मे जो यह मोड़ या परिवर्तन अभी पिछले कुछ वर्षों से ही आया है उसके साथ ही साथ उनकी कविता का प्रवाह भी मन्द पड़ गया है। इन विचारों से सम्बन्धित रंग की कवितायें अभी इनी गिनी ही है। उन्हें असंख्य कवि सम्मेलनों द्वारा पिछले १०, १५ वर्षों मे जो महान ख्याति मिल गई है उन्हें उसी से संतुष्ट होकर बैठ नहीं जाना चाहिये। उनके पास प्रबल प्रतिभा है, गहन अनुभूति है, प्रभावशाली अभिव्यंजना शक्ति है और सरल व मधुर भाषा है। जिसके द्वारा वे स्वयं अपने बताए हुए साहित्य के धर्म का पालन कर सकते हैं।

११

गोपाल दास "नीरज"

"मैं मृत्यु या प्रेम के गीत लिखता हूँ। क्योंकि, जीवन के तीन ही सत्य हैं—सौंदर्य, प्रेम और मृत्यु। सौंदर्य जीवन का आकर्षण है। प्रेम मन की भूख है। और मृत्यु जीवन की प्रेयसी है, शृंगार है। सौंदर्य जीवन की चिति शक्ति, प्रेम गति और मृत्यु यति है। किन्तु, इनके अतिरिक्त जीवन का एक और सत्य भी है जिसका नाम है भूख (रोटी)। प्रेम और रोटी दोनों ही व्यष्टि को समष्टि तक पहुँचाने के दो मार्ग हैं।"

गोपालदास 'नीरज'
१०६/१६, नेहरू नगर,
कानपुर

★

निराशा, मृत्यु और वासना के गायक श्री गोपालदास 'नीरज' हिन्दी के उन तरुण गीतकारों में से प्रमुख हैं जिन्हें कवि सम्मेलनों ने विस्तृत ख्याति प्रदान की है और जिनका कवि अभिजात वर्गीय ख्याति व प्रशंसा के षडयन्त्र में अपने निर्धारित पथ को भूल कर अन्य पथ पर भटक गया है।

हमारे वर्तमान सांस्कृतिक जीवन में कवि सम्मेलनों की अधिकता काफी बढ़ गई है। इनमे आर्थिक लाभ के अतिरिक्त जो प्रसिद्धि और ख्याति प्राप्त होती है उसने तमाम नये कवियों को न केवल आकर्षित ही किया है, वरन् उनमे से कुछ को बनाया भी किया है। नीरज भी इन्हीं कवि सम्मेलनों की उपज है, जिसे वे स्वयं स्वीकार करते है। क्योंकि, उन्हें स्वप्न मे भी यह पता न था कि वे कभी कवि बन जायेंगे। इसीलिए उन्हे आज अपनी स्थिति पर स्वयं आश्चर्य होता है। उन्होंने केवल आर्थिक लाभ की दृष्टि से लिखना शुरू किया था। किन्तु कवि सम्मेलनों की ख्याति ने उन्हे आगे बढ़ा दिया। इसीलिए वे कवि सम्मेलनों को साहित्य प्रचार के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते है, और यहाँ तक कहते हैं कि यदि कवि सम्मेलन न हों तो कविता जनसमाज तक न पहुँच सके।

नीरज, जिनका पूरा नाम गोपालदास सक्सेना है, अभाव तथा संघर्षों में पल कर अपने जीवन के २७ वर्ष पार कर चुके है। उनका जन्म ८ फरवरी, सन् १९२६ को उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के अन्तर्गत ग्राम पुरावली में एक साधारण कायस्थ जमींदार परिवार मे हुआ था। उनके पिता स्वर्गीय बाबू बृजकिशोर, जिन्होंने जमींदारी ठाट-बाट मे सारी

जमींदारी बेंच डालने के बाद और खानपुर स्टेट में नौकरी करने तथा अन्त में कानपुर जिले में एक मवेशीखाने में मुलाजमत करने के बाद उसी समय स्वर्ग सिधार गए जब बालक गोपाल केवल ६ वर्ष का था और उसकी दुःखी मां के अतिरिक्त तीन अन्य दुधमुहें भाई उसके परिवार में थे। पैतृक सम्पति के नाम पर इस असहाय परिवार के पास कुछ भी शेष न बचा था। फलस्वरूप गोपाल की बुआ उसे अपने घर एटा ले गई, जहाँ उसके फूफा बाबू हरदयाल प्रसाद वकील ने प्राइमरी से उसकी शिक्षा आरम्भ की। गोपाल पढ़ने-लिखने में बड़ा होशियार था और उसने शीघ्र ही सन् १९४२ में एटा से ही हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। किन्तु उसके परिवार पर आर्थिक संकट इतना गहरा था कि किशोर गोपाल को हाई स्कूल पास करने के बाद ही अपनी माँ के पास इटावा लौट जाना पड़ा और कुछ कमाने के उद्देश्य से कहचरी में टाइप का काम शुरू करना पड़ा। किन्तु दुर्भाग्य और विपत्ति उसका पीछा किए हुए थे। टाइप की नौकरी छूट गई। फलतः उसे इटावा में ही एक सिनेमा घर में पान-बीड़ी-सिगरेट बेचने का काम करना पड़ा। नौकरी की खोज में वह ४ नवम्बर, १९४२ को दिल्ली चला गया, जहाँ सरकार के सप्लाई विभाग में केवल ६७ रुपया माहवारी पर वह दो वर्ष तक टाइपिस्ट रहा। तदुपरान्त सांग पब्लिसिटी आफिस में लिटरेरी असिस्टेंट का काम किया। किन्तु, जैसी कि नीरज को सबसे बड़ी शिकायत है, उनके भाग्य ने उन्हें कभी सहायता न दी। मई १९४६ में वे कानपुर आये और एक वर्ष डी० ए० वी० कालेज के दफ्तर में क्लर्क रहे। वहाँ से हटे, तो जून १९४६ में वालकर्ट ब्रादर्स नामक एक विदेशी संस्था में स्टेनो टाइपिस्ट के रूप में लगभग पांच वर्ष तक काम किया। तभी उनके भाग्य ने जोर मारा और सितम्बर १९५१ में वे उत्तरप्रदेशीय सरकार की ओर से कानपुर के जिला सूचना अधिकारी नियुक्त कर दिए गए।

किन्तु इस उलट फेर के बीच गोपालदास ने एक साधना बराबर

जारी रखी, और वह थी अध्ययन की। कानपुर में आकर १९४८ में उन्होंने इन्टरमीडिएट पास किया और १९५० में आगरा विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी तथा सातवें स्थान में बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर ली। गत वर्ष उन्होंने एम० ए० फाइनल की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास कर ली है। इस प्रकार नीरज ने अपने ही हाथों से मिट्टी-पानी-रंग एकत्र कर अपने जीवन की मूर्ति अपने आप गढ़ी है। उन्होंने अपने जीवन मे कठोर विपदाओं, कष्टों और संघर्षों को झेला है और इस समय भी वे उन्हीं परिस्थितियों के शिकार हैं, क्योंकि शिक्षा से अधिक अनुराग रखने की वजह से उन्हें जिला सूचनाधिकारी के पद से हाथ धोना पड़ा है। फिर भी वे हारे नहीं हैं और उन्हें अपने उज्ज्वल भविष्य पर गहरा विश्वास है।

किन्तु नीरज की जीवन कथा का सबसे अधिक दुर्भाग्य पूर्ण अंश यह है कि उनके सम्पूर्ण साहित्य में व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष की छाप कहीं भी नहीं पड़ी है और साधारण पाठक को उनके गीत व कवितायें पढ़ कर यदि यह भ्रम हो जाये कि नीरज अत्यन्त ऐश और आराम में जीवन बिताते होंगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अभाव और संघर्ष मे पलने के बावजूद भी नीरज ने अपनी रचनाओं मे सेक्स और वासना के ही गीत गाये हैं। इससे यह साफ जाहिर होता है कि नीरज पर उस ज़हरीली विचारधारा का गहरा प्रभाव है जो हालीवुड से निकल कर अफीम के नशे के रूप मे हमारे देश के युवक समुदाय पर छा रही है।

नीरज ने घटनावशात् ही लिखना शुरू किया था। यह मई-जून १९४२ की बात है। अल्पायु में ही, वे जब एटा में हाई स्कूल मे पढ़ रहे थे, किसी लड़की से उनका प्रणय सम्बन्ध हो गया था, जो दुर्भाग्य-वश उनसे सदा के लिए बिछुड़ चुकी थी। वे अपनी प्रेयसी की मृत्यु से दुखी थे। तभी उन्होंने "बच्चन" का "निशा-निमंत्रण" पढ़ने के बाद एक दिन अकस्मात ही निम्निलिखित पंक्तियां लिखीं—

कितना एकाकी मम जीवन

किसी पेड़ पर यदि कोई पक्षी का जोड़ा बैठा होता
तो न उसे भी आंखे भर कर मैं इस डर से देखा करता
कहीं नजर लग जाय न उसको

नीरज की यह प्रथम रचना थी। इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने निराशा और अभाग्य के स्वरों में ही कविता आरम्भ की थी। किन्तु इस रचना के बाद उन्होंने नियमित रूप से लिखना आरम्भ नहीं किया। यह पंक्तियां तो अकस्मात् ही लिख गयीं थी। उन्हें कोई कवि बनने की लालसा न थी। किन्तु सन् १९४३ में दिल्ली के एक कवि सम्मेलन में अपने मधुर कंठ से किसी अन्य कवि की रचनाओं को गाने पर जब उन्हें दस रुपये पुरस्कार मिला, तब वे इस ओर आकर्षित हुए। नीरज का कंठ बड़ा राग पूर्ण था। इसीलिए एटा के लोग उन्हें 'सहगल' कह कर पुकारा करते थे। अब वे बच्चन तथा श्री बलवीर सिंह "रंग", जिन्हें उन्होंने एक कवि सम्मेलन में सुना था, की रचनाओं और गीतों के तर्ज पर कुछ तुकबंदियाँ करने लगे थे, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:—

मैंने जीवन विषपान किया, मैं अमृत मंथन क्या जानूं
और— मुझ को जीवन आधार नहीं मिलता है
आशाओं का संसार नहीं मिलता है

तभी उन्हें कलकत्ता के एक कवि सम्मेलन में जाने का अवसर मिला। वहां उन्हें जो ख्याति और प्रोत्साहन मिला उस की वजह से नीरज ने वहाँ से लौट कर फिर नियमित रूप से लिखना आरम्भ किया। फिर तो नीरज ने इतनी तीव्र गति से रचनाओं का सृजन किया कि अब तक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'संघर्ष' १९४४ में, 'अन्तर्ध्वनि' १९४६ में, 'विभावरी' १९५१ में, और 'प्राण गीत' १९५३ में। इनके अतिरिक्त 'मृत्यु गीत' और 'प्रकृति-पुरुष' नाम से उन्होंने दो लम्बी कवितायें भी लिखी हैं, जो अभी अप्रकाशित हैं, और योगिराज श्री अरविन्द तथा कुछ इटेलियन कवियों की कविताओं के अनुवाद भी किये हैं। नीरज ने गद्यगीतों में अपनी प्रेयसी के नाम कुछ पत्र भी लिखे हैं तथा केवल दो

कहानियां और कुछ निबंध भी।

नीरज पर बच्चन का बड़ा गहरा प्रभाव रहा है। यहाँ तक कि वे बच्चन को हिन्दी का सबसे बड़ा कवि मानते हैं और उसका कारण यह बताते हैं कि—"बच्चन ने हिन्दी को मरते से बचाया है, उसे आकाश से जमीन पर उतारा है और वे सब से अधिक स्पष्ट, ईमानदार और हृदय की बात कहने वाले हैं।" बच्चन के प्रति नीरज के यह अपने विचार हैं। वे बच्चन के अतिरिक्त कबीर तथा टैगोर और खलील जिब्रान पर भी अपनी आस्था रखते हैं। अतएव पाठकों को यदि उनकी आरम्भिक रचनाओं में बच्चन जी के गीतों के भाव तथा पंक्तियां, दृष्टिगोचर हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

नीरज की समस्त विचार धारा पर एक ओर तो घोर निराशा, रुदन और मृत्यु हावी है और दूसरी ओर उनके भीतर यौन तृष्णा और अतृप्त वासना डेरा डाले हुये हैं। वे स्वयं कहते हैं—"मैं मृत्यु या प्रेम के गीत लिखता हूँ।" वे जीवन के केवल तीन सत्य मानते हैं—सौंदर्य, प्रेम और मृत्यु। सौंदर्य को वे जीवन का आकर्षण मानते हैं और नारी में ही सौंदर्य देखते हैं, जग की अन्य किसी वस्तु में नहीं। उनका मत है कि—"सुन्दर स्त्री मरते हुए व्यक्ति में भी एक बार प्राण डाल सकती है।" प्रेम की परिभाषा नीरज ने वासना या भूख के रूप में की है। वे सेक्स और रोटी को एक समान मानते हैं। और मृत्यु उनके मत में जीवन की प्रेयसी है, शृंगार है। इसीलिए वे मृत्यु को प्यार करते हैं, जीवन को नहीं। यही वह सम्पूर्ण विचारधारा है, जो नीरज की रचनाओं में राज-यक्ष्मा की तरह बसी हुई है।

'संघर्ष' के कवि में घोर निराशा, बेबसी और अतृप्ति है, जो 'अन्तर्ध्वनि' में मृत्यु और रुदन की उपासना बन गई है, और 'विभावरी' में वासना की। यही इस कवि के अब तक के विकास का इतिहास है। नीरज के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय ने लिखा था कि—"वे वैयक्तिक करुणा को लेकर साहित्य में आये हैं। उनके रुदनमय गानों में निराशा

की अन्तरधारा स्पष्ट रूप से झलकती है। वे निराशा का कारण बता कर किन्कर्तव्यविमूढ़ से हो जाते हैं और विनाश का भी स्वागत करने लगते हैं।" (देखिये—'संघर्ष' के "दो शब्द" पृष्ठ १, २ और ३) बाबू गुलाब राय का यह कथन अक्षरशः सत्य है।

अपने प्रथम काव्य संग्रह 'संघर्ष' में ही नीरज ने अपना परिचय इन शब्दों में दिया है—

निर्जन की नीरव डाली का मैं फूल

और अपनी कविता के सम्बन्ध में उन्होंने बतलाया है कि—

चिर अतृप्ति अविरल आंसू से सिंचित है मेरी कविता

कवि की इस स्वीकारोक्ति के बाद कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। उसके जीवन में इतनी अतृप्ति और निराशा है कि वह दर-दर रोता फिरता है और उर्दू के शायरों की अतिरंजना की भाषा में कहता है—

इतना रोया खुद डूब गया पर जलता हृदय बुझा न सका
(संघर्ष)

इसीलिये कवि प्रकृति में भी केवल यही नियम देखता है कि रोना ही प्रमुख है—

अरे प्रकृति का यही नियम है
रोदन के पीछे गायन है
पहिले रोया करता है नभ, पीछे इन्द्र धनुष छाता है
रोने वाला ही गाता है (संघर्ष)

इसीलिए कवि स्वयं भी रोने को गाना मानता है और कहता है—

भार बन रहा जीवन मेरा
हाय नहीं अब कोई चारा
चुपके चुपके मन में रोऊँ बस मेरा अधिकार यही है

अथवा— मैं रोदन ही गान समझता (संघर्ष)

अथवा—पूर्ण होकर रुदन भी चिर गान बनता है (अन्तर्ध्वनि)

और जब कवि रोते रोते थक जाता है, तब उसे जीवनो में कोई आशा और अभिलाषा शेष नहीं रहती और उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ने लगता है—

मुझे न जीवन की अभिलाषा
मुझे न तुम से कुछ भी आशा

अथवा— यही तिमिर तो जीवन साथी
छुपी इसी में मेरी थाती (संघर्ष)

और तब वह अपने आप को विवश तथा असहाय पाकर चीख पड़ता है—

हम जीवन में परवश कितने अपनी कितनी लाचारी है
हम जीत जिसे सब कहते हैं, वह जीत हार की बारी है
(अन्तर्ध्वनि)

अथवा— अपनी कितनी परवशता है
जग से निन्दित पीड़ित होकर
जीवन में कुछ सार न पाकर
घूँट हलाहल की कटु पीकर
जब कि चाहता मन मर जाना (संघर्ष)

तब कवि इस संसार मे सब कुछ निस्सार पाने लगता है—

आज भूल जाता क्यों यह जग
मिट्टी का निर्मित जीवन
मिट्टी पर ही सधा हुआ है
मानव का मानस चेतन (अन्तर्ध्वनि)

और फिर वह चीख उठता है—"कब्र है धरती, कफन है आसमान" अथवा "जन्म है यहाँ मरण त्योहार" (विभावरी) इस प्रकार यह कवि मृत्युवादी बन जाता है। चूंकि इस कवि में पर्याप्त साहस और शक्ति का अभाव है, इसलिए जीवन की निराशा, परवशता और विफलता उसे मृत्यु का विश्वासी बना देती हैं और फिर वह मृत्यु

को ही जीवन मान कर उसी का राग गाने लगता है। क़ब्र, क़फ़न, मरघट में ही उसकी सारी कविता सिमट जाती है। 'विभावरी' की अधिकतर कविताओं में इन्हीं शब्दों से सम्बन्धित भाव पढ़ने को मिलते हैं। इस प्रकार यह कवि सम्पूर्ण समाज में मृत्यु का प्रचारक बन जाता है। वह कहने लगता है—

हर पखेरू का यहाँ है नीड़ मरघट पर
है बंधी हर एक नैया मृत्यु के तट पर
खुद बखुद चलती हुई यह देह अर्थी है
× × ×
भूमि से, नभ से, नरक से, स्वर्ग से भी दूर
हो कहीं इन्सान, पर है मौत से मजबूर (विभावरी)

अथवा—आलिंगन कर रहीं मौत का बाहें प्यारी प्यारी
रे! मरघट की ओर मुड़ी हैं राहें जग की सारी

इतना ही नहीं वह प्रकृति में भी मृत्यु के ही चित्र देखता है और कहता है—देख धरा की नग्न लाश पर नीलाकाश खड़ा है
× × ×
और—सूर्य उठाये हुये चांद की अर्थी निज कंधों पर
(विभावरी)

किन्तु मृत्यु के इस प्रचार के समय भी कवि अपने हृदय से लिपटी हुई वासना को अलग नहीं हटा पाया है। नीरज ने विभावरी में मृत्यु के साथ ही वासना का भी प्रचार किया है। प्रेम एवं नारी के सम्बन्ध मे उनके विचार भोगवादी रहे हैं। सन् १९४२ में प्रथम प्रेयसी की मृत्यु के पश्चात् सन् १९४८ में अपने द्वितीय प्रणय-सम्बन्ध के बारे में उन्होंने बताया है कि—"जब से वह (नयी प्रेयसी—ले०) मेरे जीवन में आई है मेरी हर कविता की हर पंक्ति में वह समा गई है।" नीरज के जीवन में बड़ी प्यास है, इसलिए वे जी भर कर पीने के आदी हैं। वे अपनी सुनयने से कल का ध्यान न करने का निवेदन करते हुए कहते हैं:—

प्रिय इससे अरमानों की इस लाज भरी क्वांरी सी निशि को
बन जाने भी दो सुहाग की रात छोड़ हठ मान सुनयने

किन्तु जब उनकी हठीली प्रेयसी नहीं मानती है तो वे उसे कल की अनिश्चितता का उपदेश देते हुए पुन: समझाते हैं—

इसलिये कल पर न टालो आज की अभिसार वेला
प्रिय! मिलन के वास्ते यह रात क्या, हर रात कम है

और फिर वे मिलन-रात्रि का महत्व बताते हुए उससे कहते हैं—

पर न आयेगी कभी यह रात फिर से
पर मिलोगी फिर न तुम जीवन डगर पर
इसलिये यदि द्वार आये मुक्ति भी तो
बे इजाजत आज वह भी लौट जाये

ऐयाश नवाबों की सी यह भावना ले कर नीरज अपने दिल की प्यास के सामने मुक्ति को भी तुच्छ मानते हैं और जब वे अपनी प्रेयसी को आलिंगन में समेट लेते हैं तब कहते हैं—

बाहुओं की घाटियों में यह नदी जैसी जवानी
आज बँधने को हुई लाचार लेकर आग पानी

अथवा— आज प्यासी बाहुओं के कुन्ज बन में
सागरों की देह शरमाई पड़ी है
डगमगाते गर्म ओठों की शरण में
आग की आंधी बुलाई सी खड़ी है (विभावरी)

और ऐसी अवस्था में वे अपनी प्रेयसी से कहते हैं—

मत हटाओ होठ इस डर से कि जूठे हो न जायें
प्यार ने प्रेयसि! कभी माना नहीं कोई नियम है

नियम शब्द का तात्पर्य यहाँ प्रतिबन्ध से ही है, क्योंकि कवि तो लज्जाहीन मिलन का पक्षपाती है। वह कहता है—

आज युग के बाद मेरी प्यास ओठ भिगो सकी है
आज चुम्बन की लगी बरसात अधरों की गली में

बीच में दीवार सी फिर क्यों खड़ी सहमी शरम है

(विभावरी)

कवि अपनी प्रेयसी से इस नारी सुलभ लज्जा को भी त्याग देने की कामना करता है और अपनी जलन मिटाने की इच्छा प्रकट करते हुए कहता है—

खिसक खिसक जाता उरोज से अभी लाज पट
अंग अंग में अभी अनंग तरंगित कर्षण
केलि-भवन के तरुण दीप की रूपशिखा पर
अभी शलभ के जलने का उल्लास शेष है

(विभावरी)

नीरज के हृदय की यह भावनायें उसे प्रकृति में भी वासना के ही दर्शन देती हैं। वह कहता है—

रात के उभरे उरोजों में छिपाये चांद मुखड़ा
वह लता तरु की जवानी बाहुओं में भर रही है

(विभावरी)

इस प्रकार इन समस्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि नीरज के हृदय मे यौन तृष्णा शरीर पर खाल की भाँति लिपटी हुई है और उसने उसे चित्रित करने मे रीति कालीन कवियों को भी मात कर दिया है। नीरज ने तुक-बन्दी से कविता आरम्भ की थी। 'संघर्ष' का शिशु कवि 'विभावरी' में प्रौढ़ और प्रतिभावान दिखाई देता है। उसकी अभिव्यंजना शक्ति और प्रभावोत्पादकता बढ़ गई है। किन्तु आज हिन्दी कविता की दिशा परि-वर्तित हो चुकी है। निराशा, मृत्यु और वासना का प्रचार करके किसी भी कवि की कविता जीवित नहीं रह सकती। जो साहित्यकार समय की पुकार और गति को नहीं सुनता और देखता, वह टिक नहीं सकता। आज कविता वैयक्तिक सुख-संतुष्टि या मानसिक भोग-विलास का साधन नही है। वह जीवन के निर्माण और परिष्कार का अस्त्र बन चुकी है। यदि नीरज को यह विश्वास है कि इस देश में साम्यवाद अवश्य आयेगा,

जैसा कि उन्होंने बताया है, तो उन्हें उसकी अगवानी का प्रयास भी अभी से आरम्भ करना पड़ेगा। जबकि नीरज ने स्वयं अपनी "विद्रोही" अथवा "मजदूर का स्वप्न" शीर्षक कविता में वर्तमान भारतीय समाज के पूंजीगत वर्ग भेद को नष्ट करने के लिए जनता को सौगंध दिलाई थी—

मानव तुम सौगन्ध तुम्हें है अपनी मानवता की
ईंट हिला देना नरभक्षक इस वैभव सत्ता की

(अन्तर्ध्वनि)

तब वैसा ही उन्हें स्वयं आचरण करना होगा। साहित्यकार कोरा उपदेशक नहीं होता, अन्यथा उसकी बात का कोई मूल्य नहीं। नीरज को अपनी इस सौगन्ध को स्वयं स्मरण करना है। उनके जीवन और घर में (वे विवाहित है, और उनके एक पुत्र भी है) दिन-रात जो अभाव और समस्यायें अपने पांव पसारे रहती है, कम से कम उसे ही देखकर, इन परिस्थितियों के समूल विनाश के लिये उन्हें अपने साहित्य में कटिबद्ध होना चाहिये। सद्साहित्य का यही अर्थ है कि वह कल्याणकारी और लोक मनरंजक दोनो हो।

डाक्टर नगेन्द्र ने नीरज के प्रथम संग्रह 'सघर्ष" के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा था कि—"उनकी चीख में (कविता में—लेखक) तीव्रता कम और घोष अधिक है। परन्तु उनका घोष ही उन्हें कवि सम्मेलनों का सफल कवि बनाता है।" डाक्टर नगेन्द्र ने नीरज का सही अध्ययन किया था।

जहां तक नीरज की रचनाओं की भाषा और शब्द-विन्यास का सम्बन्ध है, वे उस्ताद मालूम देते हैं। उनकी भाषा सरल और सुबोध है। साधारण से साधारण पाठक या स्रोता तक वे अपनी कही गई बात का अर्थ पहुँचा देते हैं। उपमाये प्रस्तुत करने मे उनकी कोमल कल्पना कमाल प्रदर्शित करती है। तात्पर्य यह है कि नीरज के पास वे सभी तत्व विद्यमान् हैं जो किसी व्यक्ति को सफल कवि का श्रेय प्रदान कर सकते हैं। किन्तु उनके पास स्वस्थ विचारधारा और प्रौढ़ दृष्टिकोण की कमी है।

नीरज के साथ सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि उन्हें अभिजात वर्ग ने उनकी प्रतिभा को देखकर प्रशंसा और प्रोत्साहन द्वारा अपना बना लिया। फिर तो वे अभिजात वर्ग की विलासी-भावनाएँ ही चित्रित करने लगे। नीरज की दशा अन्य नये तरुण कवियों के लिए एक उदाहरण है। उन्हें इस षडयंत्र से बचना है। हर्ष की बात है कि इधर कुछ नवीनतम रचनाओं में नीरज के कवि का स्वरूप परिवर्तित होता दिखाई देता है। विश्व शांति पर लिखी गयी उनकी कविता इसका उदाहरण है। और हाल ही में प्रकाशित उनके नए कविता संग्रह "प्राण गीत" की कुछ रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। इस संग्रह को देखकर प्रतीत होता है कि कवि अब करवट ले रहा है। भविष्य के लिए यह सुन्दर संकेत है। कवि अब अपने दायित्वों और कर्त्तव्यों को समझने की चेष्टा में रत दिखाई देता है। "प्राण गीत" की भूमिका में नीरज ने अपनी विचारधारा की व्याख्या भी की है, जिससे यह तो अवश्य प्रतीत होता है कि कवि में अब बौद्धिक चेतना का विकास हो रहा है, किन्तु सौन्दर्य (चिति) प्रेम (गति) और मृत्यु (यति) के सम्बन्ध में उसने जो कुछ बताया है वह अपनी जर्जर विचारधारा को दार्शनिकता और तर्क के आवरण में ढकने का प्रयासमात्र ही मालूम देता है। नीरज को युग-स्वर-साधक बनने के लिए इस विचारधारा का मोह त्यागना ही पड़ेगा। उनमें प्रतिभा के साथ ही पर्याप्त क्षमता भी है, जिसका वे सदुपयोग कर सकते हैं।

१२

निरंकार देव सेवक

"अनुभूति एक दुर्बलता है और लिखना एक रोग।...मरते समय तक संघर्ष में से कुछ क्षण सुख के प्राप्त करते हुए जीने की साधना बनी रहे—यही मेरी कामना है।"

निरंकार देव सेवक
१८१, सिविल लाइन
बरेली

★

मध्यवर्ग की आकृतियों और विकृतियों से परिपूर्ण निरंकार देव सेवक नयी पीढ़ी के उन कवियों में से एक हैं जो एकान्त-साधना में लीन साहित्य वाटिका के 'विहग कुमार' की भांति प्रगति और विकास के उन्मुक्त गगन में प्रवेश करने के लिए चेष्टावान रहे हैं। किन्तु, अब उनके कवि का सफल स्वरूप 'बाल गीतकार' के रूप में हमारे सामने प्रकट हुआ है जिससे हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति की आशा की जा सकती है।

निरंकार देव सेवक का जन्म लगभग ३५ वर्ष पूर्व १६ जनवरी सन् १६१६ को उत्तर प्रदेश के बरेली शहर में एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। (आपने शायद आदर्श के मोहवश अपनी जाति मनुष्य और धर्म मानव बतलाया है।) आपके पिता श्री रामभरोसे सेवक एक अध्यापक हैं। माता-पिता के अतिरिक्त तीन भाइयों तथा दो भाभियों सहित आपका परिवार काफी भरा पूरा है। आप स्वयं भी विवाहित हैं। आपके पूर्वजों के पास, जो रुहेला युद्ध के समय मुस्लिम शासकों के मंत्री बताये जाते हैं, पहले काफी जमींदारी भी थी। किन्तु आपके परिवार के पास अब कोई विशेष पैतृक सम्पत्ति नहीं है। अध्यापन का कार्य एक प्रकार से आपके परिवार का पैतृक व्यवसाय रहा है। शायद इसीलिए अपनी शिक्षा-दीक्षा समाप्त करने के बाद निरंकार देव ने भी पहले इसी क्षेत्र में प्रवेश किया था। किन्तु आजकल वे बरेली में वकालत कर रहे हैं। एक अध्यापक का पुत्र होने के नाते निरंकार देव को आरम्भ से ही शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त हुईं। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० करने के बाद वकालत का डिप्लोमा प्राप्त किया।

फिर बनारस विश्वविद्यालय से बी० टी० का डिप्लोमा लिया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यरत्न परीक्षा भी पास की। शिक्षा का क्रम समाप्त करने के बाद वे अध्यापक बने तथा बरेली के डी० ए० वी० हायर सेकेन्डरी स्कूल के मुख्याध्यापक पद पर कार्य किया। अन्त में इस क्षेत्र से हट कर उन्होंने वकालत आरम्भ की।

निरंकारदेव ने १३ वर्ष की ही अल्पायु में, जब कि वे पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी थे, भजन इत्यादि लिख कर तुकबन्दी करना आरम्भ कर दिया था। किन्तु सबसे पहली बार आपकी कविता, जिसका शीर्षक 'विहग कुमार' था, सन् १९३७ में कलकत्ते के विख्यात मासिक पत्र 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई थी। अब तो आपकी रचनाएँ दीदी, वीणा, नया 'समाज, लोक जीवन, बाल-सखा आदि पत्र-पत्रिकाओं में अक्सर प्रकाशित हुआ करती हैं और छोटे-बड़े आपके पाँच कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं—'कलरव' सन् १९४१ में, 'स्वस्तिका' सन् १९४२ में, 'चिनगारी' सन् १९४३ में, 'जनगीत' सन १९४५ में और 'रिमझिम' (बालगीत ंग्रह) सन १९५३ में। अप्रकाशित रचनाओं में आपके पास अभी अनेक कविताएँ, कहानी व लेख इत्यादि हैं। कविताओं के अतिरिक्त आपने बालगीत, एकांकी नाटक, कहानियाँ और लेख भी लिखे हैं।

निरंकारदेव ने अपने दृष्टिकोण को यथार्थवादी और विचारधारा को मानवतावादी बतलाया है। यद्यपि उन्होंने अपने दृष्टिकोण व विचारधारा का कोई विशेष स्पष्टीकरण नहीं किया है, किन्तु उनकी रचनाओं मे उसकी व्याख्या के दर्शन अवश्य प्राप्त होते है जिसमें एक मध्यवर्गीय साहित्यकार की दिमागी उलझनें, आदर्श का मोह, यथार्थ के प्रति विद्रोह की भावना, रूढ़ियों तथा पुरातनता के संस्कार आदि स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। श्रेष्ठ विचारपूर्ण साहित्य के अध्ययन में आपने अपनी रुचि बतलाई है, किन्तु काव्य के प्रति लिखा है कि—"अनुभूति एक दुर्बलता है और लिखना एक रोग।" यह कथन उनकी समस्त विचारधारा का प्रति-

निधि स्वरूप सा प्रतीत होता है। आपके मत में अभी तक कोई सबसे अच्छा कवि सामने नहीं आया है और न आपके ऊपर किसी साहित्य का प्रभाव पड़ा है। किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध होने की बात से भी आपने इन्कार किया है, किन्तु बतलाया है कि "सभी प्रगतिशील विचार के दलों और व्यक्तियों से मेरा सम्बन्ध है।"

निरंकारदेव सेवक एक मध्यवर्गीय कवि हैं। उनकी रचनाओं में मध्यवर्ग की कुण्ठित विचार धाराओं का प्रतिबिम्ब है। उनमें पुरातन जर्जर विचारों और रूढ़ियों का प्रभाव भी है। मध्यवर्ग जब विद्रोही बनता है तो पहले वह कल्पनाशील अधिक रहता है, यथार्थ से दूर भागने की चेष्टा करता है और आदर्श के नारे लगाता है। निरंकारदेव सेवक की रचनाओं में भी यह सभी परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। यद्यपि उन्होंने स्वयं अपने दृष्टिकोण को यथार्थवादी बतलाया है, किन्तु वह एक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का दृष्टिकोण है जो दूर-दूर रह कर मौखिक सहानुभूति के रूप में यथार्थ का चित्रण करता है, और उस अवस्था में भी काल्पनिकता तथा आदर्श का दामन नहीं छोड़ता। यही कारण है कि वे अनुभूति को दुर्बलता तथा लिखने को एक रोग मानते हैं, अर्थात् कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर किसी उद्देश्य की पूर्ति या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे नहीं लिखते। उनके इस दृष्टिकोण का प्रभाव उनकी रचनाओं में भी व्याप्त है।

निरंकारदेव सेवक के दो प्रथम कविता-संग्रहों—"कलरव" तथा "स्वस्तिका"—में हमें एक ऐसे नवजात कवि के दर्शन होते हैं जो एक शिशु की भाँति आकाश में पक्षी बन कर उड़ने की कल्पना करता है। इन दोनों संग्रहों में कवि की अनुभूति, जो कल्पनाशील अधिक है, प्राकृतिक-यथार्थ से प्रेरणा ग्रहण करती दिखाई देती है। तब तक कवि की दृष्टि सामाजिक-यथार्थ की ओर नहीं मुड़ पाई थी। बल्कि उस कटु यथार्थ से बचने की पलायनवादी भावना उसमें प्रबल थी। किन्तु उनके तीसरे कविता-संग्रह "चिनगारी" में उनकी अनुभूति सामाजिक-यथार्थ से प्रेरित

प्रतीत होती है, जिस पर मध्यवर्गीय कुंठा और प्राचीन संस्कारों का प्रभाव है। यह प्रभाव उनके चौथे संग्रह "जनगीत" में, जिसमें कुल छः रचनाएँ हैं, तिरोहित होता दिखलाई देता है। इस संग्रह की रचनाओं में एक दल-विशेष के राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रभाव भी है। सम्भवतया यह इनी-गिनी रचनाएँ कवि ने उस राजनीतिक दल के प्रचार-आन्दोलन को बल देने के लिए ही लिखीं हों, क्योंकि "जनगीत" का प्रकाशन उसी दल (यू० पी० रेडिकल डिमोक्रेटिक पार्टी) ने ही किया था। निरंकारदेव सेवक का पाँचवा संग्रह "रिमझिम" है, जिसमें केवल उनके बालगीत ही संग्रहीत हैं। इस संग्रह की सफलता तथा उसकी रचनाओं की श्रेष्ठता का अनुमान इससे कुछ लगाया जा सकता है कि विन्ध्य प्रदेश की सरकार ने इस संग्रह पर पुरस्कार प्रदान कर कवि को सम्मानित किया है।

निरंकारदेव सेवक के प्रथम संग्रह "कलरव" में हमें उनका आरम्भिक परिचय निम्नलिखित चरणों से प्राप्त होता है जिनमें वे कल्पना करते हैं कि—

विभु यदि मेरे पंख लगादे
तो मैं इस सूने अम्बर में
बहुत-बहुत ऊँचा उड़ जाऊँ

फिर वे अपने 'बचपन के स्वप्नों' की याद कर पश्चाताप करते हैं और बरसात, पावस, आँधी, संध्या आदि के रंगीन चित्र उतारते हैं। इन रचनाओं से यह अवश्य प्रतीत होता है कि कवि के जीवन में ऐसे तमाम क्षण आए हैं जब वह प्रकृति के सौंदर्य और स्वरूपों में लीन हो गया था। उन्हीं सुखद क्षणों के प्रभाव की यह रचनाएँ हैं। तभी उनमें अनुभूति की मार्मिकता है। किन्तु साथ में आस्तिकता का प्रभाव और नश्वरता की भावना भी उनमें आदि से अन्त तक व्याप्त है। तभी तो कवि ने स्थान-स्थान पर लिखा है कि—

वाह्य दिखावा है यह सारा, किस पर किसका प्यार यहाँ ?
मिथ्या हैं ममता के बन्धन, मुँह देखा व्यवहार यहाँ।
पर उस मायापति की माया का प्रपंच मैं मान गया।

अथवा—किन्तु तुला पर नश्वरता की जब यह जग सारा तोला
तो इस क्षण भंगुर दुनियाँ पर मैं हो हो हैरान गया।

(कलरव)

अथवा—प्रेमी उर की आशाओं का नश्वर जग में कुछ मूल्य नहीं
जग की शोभा-सुषमाओं पर नश्वरता का परिधान, प्रिये!

(स्वस्तिका)

यही नश्वरवादी विचारधारा ही आगे चल कर कवि को पलायनवादी बना देती है और उसमें संघर्ष हीनता उत्पन्न करती है। एक शोषित समाज में प्रणय-सम्बन्धों की अपूर्णता या असफलता से किसी व्यक्ति में जो घोर निराशा जन्म लेती है वह साहस-हीनता की वजह से उसे मृत्यु का विश्वासी और पलायनवादी बना देती है। निरंकारदेव सेवक के जीवन में भी यह परिस्थितियाँ आ चुकी हैं। इस संसार को नश्वर तथा क्षण भंगुर और छल-प्रपंच, दुखों तथा व्याधियों से भरा हुआ मान कर इसे त्याग देने की भावना और क्षितिज के उस पार कल्पना लोक में किसी नए संसार की सृष्टि करने की भावना उनके मन में भी जाग चुकी है। तभी उन्होंने अपनी प्रिय को बताया था कि इस जगत में सुख-शांति मिल सकना असम्भव है—

दुख-द्वन्द्व भरी इस दुनियाँ में
कितनी दुर्लभ है शांति प्रिये

अथवा—इस भव-कोलाहल में पड़ कर पाया न किसी ने चैन कभी
सम्भव है, इससे दूर कहीं रहती हो कुछ सुख शांति प्रिये

इसीलिए एक अभिजात वर्गीय प्रणयी की भाँति यहाँ से भाग निकलने की सलाह उन्होंने भी अपनी प्रिय को दी थी—

उस ओर, क्षितिज के पार चलो
अपना संसार बसाएँगे
नीरव निर्जनता ही में निज
लघु प्रेम कुटीर बनाएँगे

अथवा— हैं वहीं के दो पथिक हम-तुम, जगत परदेश है, प्रिय
सर्व सुखमय स्वर्ग अपना तो क्षितिज के पार सुन्दरि

अथवा— कुटिलताओं से है परिपूर्ण
यहाँ मानव-जीवन व्यापार
नहीं मेरे रहने के योग्य
कहीं पृथ्वी पग भी दो-चार

इन उद्धरणों में मध्यवर्ग की मन : स्थिति का वास्तविक चित्रण है। शोषणवादी समाज में, जहाँ प्रेम पाप माना जाता है, इस प्रकार के विचार प्रायः हर युवक-युवती में उत्पन्न हुआ करते हैं, क्योंकि वे समाज के खूनी पंजों से अपने प्यार को बचाना चाहते हैं। किन्तु असफल होने पर मृत्यु या अनैतिकता—यही दो मार्ग उनके सामने रह जाते हैं। समाज में जीवित अवस्था में मिलन असम्भव जान कर वे इस झूठे आदर्श पर कि मृत्यु के बाद दो प्रणयी आत्माओं का मिलन क्षितिज के पार बसे किसी परलोक में अवश्य हो जायगा वे निरीह, साहसहीन प्रणयी आत्म हत्याएँ कर लेते हैं और इस प्रकार बजाय समाज को बदल डालने के, वे खुद नष्ट हो जाते हैं। इसलिए जब तक समाज में उस स्वस्थ तथा पवित्र वातावरण का निर्माण नहीं होता जिसमें प्रेम पाप नहीं बल्कि पुण्य और मानवीय माना जाएगा तब तक निरंकारदेव सेवक को, तथा उन जैसे अन्य कवियों को, यही लिखना पड़ेगा कि—

कौन किसको याद रखता, प्रीति मुँह देखी जगत में

और तब उन्हें 'मजनूं' बन कर यही कहना पड़ेगा कि—

है न कोई साथ मेरे चल रही है मौन छाया

और फिर या तो उन्हें मौत का दामन पकड़ना पड़ेगा या फिर वे विभिन्न प्रकार की अनैतिकताओं के शिकार बनेंगे। यही हमारे वर्तमान भारतीय समाज की जर्जर स्थिति है, जिसने निरंकारदेव सेवक के दूसरे कविता संग्रह "स्वस्तिका" की प्रायः सभी रचनाओं को जन्म दिया है। इन रचनाओं का दोष यही है कि इनमें न तो कहीं संघर्ष की भावना है

और न इन परिस्थितियों को नष्ट करने की, यद्यपि कवि के हृदय में यह प्रश्न सूचक कामना अवश्य थी—

उच्च दीवारें गिरा कर मानव-बन्दी-गृहों की,
क्या कभी संसार सारा एक ही परिवार होगा ?

शायद इसीलिए "चिनगारी" कविता संग्रह में निरंकारदेव की अनुभूति समाज-परक हो गयी है। मध्यवर्ग के जीवन को आज जो तमाम समस्याएँ चारों ओर से घेरे हुए हैं उनकी वजह से विवश होकर कवि को कहना पड़ता है कि—

आज न जाने क्यों
गीतों से उकताता मेरा मन
आज न जाने
गति-लय से क्यों घबराता मेरा मन
सुन्दरता को देख लिया करता हूँ कुछ बे मन से
कला और कल्पना चली सी गई आज जीवन से

फिर वह समाज के घिनौने स्वरूप को देखकर कह उठता है—

नर्क कुंड में पड़ा-पड़ा बिलबिला रहा संसार
जैसे किसी सड़ी नाली में कीड़े कई हजार

और वह उसके शोषणकारी स्वरूप को देख कर कहता है कि—

किसी महा विकराल दैत्य के हो काले पंजे समाज तुम
बड़े नुकीले फैलाये नाखून
टप-टप जिनसे टपक रहा है खून !

इसलिए कवि के हृदय में विद्रोह की चिनगारी जल उठती है जिससे उसके हृदय में एकत्र प्राचीन संस्कारों का कूड़ा-करकट सुलगने लगता है। तब वह धर्म और जाति-पांत के आडम्बरों तथा भेदभाव को नष्ट करने की बात करने लगता है। उसके हृदय में अधिकारों के प्रति सचेतनता उत्पन्न होती है और वह इन अत्याचारी विनाशकारी परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करने से साफ इंकार कर देता है। तब यह कवि एक मध्य-

वर्गीय विद्रोही की भांति कह उठता है—

दुर्ग हमारे विश्वासों का ढह जाएगा आज
सह न सकेंगे अब हम अपने ऊपर यह अन्याय
अन्यायी का न्याय मान लेना भी तो है पाप

और तब वह धर्म के विनाशकारी रूप को पहचान कर कहता है—

धन पर निर्भर है जो धर्म
उसका मर्म
समझ न पायेंगे हम निर्धन भूखे, दीन, गँवार
गीता, वेद, पुराण
दर्शनों, उपनिषदों का ज्ञान
वही विचार सकेगा, जो है भोजन से निश्चिन्त
भक्तों को ठगने का साधन बने हुए हैं राम
पापों को ढकने का साधन है सीता का नाम

इस स्थिति को पहुँच कर कवि अपने वास्तविक धर्म को समझ सकने के योग्य बन पाता है। तब वह बतलाता है कि—

धर्म हमारा है जीने का जन्म सिद्ध अधिकार
और प्राण देकर भी करना जीवन का उद्धार

इसीलिए वह अपने समान अन्य सभी लोगों को और सम्पूर्ण समाज को सम्बोधित करके स्पष्ट कहता है कि—

जीवन का संघर्ष तुम्हारे भी तो है घनघोर।
आज नहीं रह सकते जीवित
तुम दुनियाँ में सब से बच कर, रह कर आत्मविभोर
अपने अन्ध कूप तक सीमित।
आज नहीं तो कल या परसों
अपने को कायम रखने को
युद्ध तुम्हें भी करना होगा
लड़ते-लड़ते मरना होगा

घुस आएगा जब कि तुम्हारे घर में बड़ा मगर।

और वह नारी समाज से कहता है—

युग-युग के कारागारों से नारी, तुम आजाद बनो अब

"चिनगारी" में निरंकारदेव सेवक के कवि का यही उज्ज्वल स्वरूप है, जिसमें विद्रोह की ललकार भी है और समाज के स्वरूप को बदल डालने की भावना भी। इस संग्रह की रचनाओं में कवि का स्वरूप परिवर्तित और भिन्न है। एक मध्यवर्गीय शोषित-दलित व्यक्ति में क्रांति की जो भावना जन्म लेती है, वह इन रचनाओं में भी है। किन्तु वह सर्वहारा की क्रांतिकारी भावना से सर्वथा भिन्न है। कवि शायद अपने वर्ग का, अपने समाज का त्राण चाहता है। इस अवस्था में भी वह देश के सभी शोषित-दलित, किसान-मजदूरों आदि की पूर्ण मुक्ति की भावना का प्रदर्शन नहीं करता है। इस भावना का दर्शन हमें केवल "जनगीत" की रचनाओं में प्राप्त होता है, जिनमें निरंकारदेव कहते हैं कि—

आजादी, सच्ची आजादी है मजदूर किसानों की

अथवा—किसी देश की आजादी की जनता ही अधिकारी है

अथवा—आजादी तो वह है जिसमें कोई सरमायादार न हो

और अन्त में जब वे यह कहते हैं कि—

आज दुनियाँ के लिए जो
स्वप्न है कल सत्य होगा
एक नूतन सृष्टि के
निर्माण के आधार हैं हम

तब उनके इस विश्वास का भी परिचय प्राप्त होता है कि भविष्य में सम्पूर्ण विश्व से हर तरह की शोषण की प्रथाओं का अन्त होगा और एक नयी सृष्टि अर्थात् वर्गहीन, शोषणहीन समाज की रचना होगी। किन्तु उसके लिए क्राँति का आवाहन नहीं है और न कोई मार्ग-निर्देश।

निरंकारदेव सेवक ने बालकों व शिशुओं के लिए जो छोटी-छोटी कवितायें व गीत लिखे हैं वे "रिमझिम" में संग्रहीत हैं। उनके सम्बन्ध

में उन्होंने स्वयं बतलाया है कि—"हिन्दी में अच्छे बाल-गीतों का अभाव अन्य व्यक्तियों की भाँति मुझे भी खटकता था।...अंग्रेजी में बाल-गीतों के कई सुन्दर संग्रह मैंने पढ़े थे। उन्हीं से मुझे हिन्दी में बालगीत लिखने की प्रेरणा काशी विश्वविद्यालय के टीचर्स ट्रेनिंग कालिज में सन् १९४३-४४ में हुई।...अस्तु, मैंने बालकों के स्वभाव के अनुसार, उनके आस-पास की वस्तुओं का प्रभाव उनके कोमल हृदयों पर पड़ने से जो सरल उद्‌गार या मनोभाव उत्पन्न हो सकते थे, उन्हीं को अपने बालगीतों का विषय बनाने का प्रयास किया, उनके मन की बात कहने की चेष्टा की।"

निरंकारदेव सेवक के इस कथन में पूर्ण सत्य है। बालगीत लिखने में वे सफल सिद्ध हुए हैं। इसका कारण यही है कि उन्होंने बाल-मनोविज्ञान का अच्छा अध्ययन किया है। उनके बालगीतों में गेय-तत्व की प्रधानता है, जिन्हें बालक खेलते समय गा सकते हैं और इस प्रकार उनके ज्ञानवर्द्धन में सहायता मिल सकती है। उनमें बालकों की रुचि के अनुकूल विषय और वर्णन हैं, जिनसे वे भलीभाँति परिचित रहते हैं। तभी यह गीत बालकों को प्रिय हैं। इसका एक प्रमाण यह है कि जब से मेरे पास "रिमझिम" काव्य संग्रह आया है, मेरी पुत्री उसकी स्वामिनि बन गई है और उसे कई गीत याद हो गए हैं। इस प्रकार निरंकारदेव सेवक ने इस दिशा में अपनी योग्यता का सुन्दर परिचय दिया है। पं० सीताराम चतुर्वेदी का यह कथन बहुत कुछ उपयुक्त है कि—"हिन्दी में बालगीतों के अभाव को सेवक जी की रचनाएँ दूर कर देंगी और उन सब लेखकों का पथ-प्रदर्शन करेंगी जो इस क्षेत्र में उतरने के लिए नायक खोज रहे हैं।" वास्तव में हिन्दी में उपयुक्त, रोचक तथा सोद्देश्य बाल-साहित्य का अभाव सा है। निस्सन्देह बालक देश के भावी नागरिक और भाग्य-विधाता हैं। उन्हें भूत-प्रेतों की कहानियाँ या पौराणिक कथाएँ सुना कर हम उनके स्वस्थ मानसिक विकास को अवरुद्ध कर देते हैं, उनके अन्दर हीनता और भय की भावनाएँ जाग्रत कर देते हैं।

यह बड़ा विनाशकारी है। बालकों का मानस बड़ा कोमल, कल्पनाशील और ग्राह्य होता है। उन्हें समाज की भावी सम्भावनाओं और यथार्थताओं के अनुरूप कुशल नागरिक व समाज-निर्माता बनाने के लिए उपयुक्त साहित्य की नितांत आवश्यकता है। हर्ष की बात है कि निरंकारदेव सेवक ने इस तथ्य को समझ कर इस ओर अपनी लेखनी मोड़ी है और इस आवश्यकता की ओर अन्य साहित्यकारों का भी ध्यान आकर्षित किया है। नये कवियों का यह भी एक दायित्व है कि वे अपनी भावी पीढ़ी के लिए शिक्षाप्रद, रोचक, सोद्देश्य, सरल साहित्य रच कर अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करें।

निरंकारदेव सेवक की रचनाओं की भाषा तथा शैली में कोई नवीनता या आकर्षण नहीं है। वह सरल, बोधगम्य और स्वाभाविक है। वे कवि-सम्मेलनों को अनावश्यक मानते हैं और उनका मत है कि—"कवि सम्मेलन कविता के प्राण लेवा होते हैं।" किन्तु फिर भी "अपनी सत्ता कायम रखने के लिए कभी-कभी उनमे भाग लेना" उन्हें अनिवार्य प्रतीत होता है। उनकी महत्वाकांक्षा है कि—"मरते समय तक संघर्ष में से कुछ क्षण सुख के प्राप्त करते हुए जीने की साधना" जारी रहे।

१३

साहबसिंह मेहरा
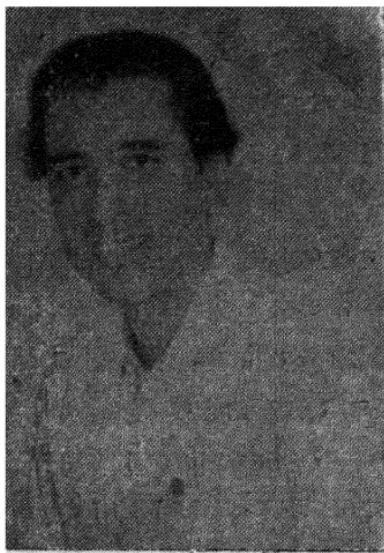
"लेखकों और साहित्यकारों की जगह आम जनता के बीच में है।...
इसलिए सभी साहित्यकारों को कला के माध्यम से जर्जर समाज को बदल डालने के कार्य में जुट जाना चाहिए।...

"संघर्षों से अलग रह कर उत्कृष्ट क्रांतिकारी साहित्य कभी नहीं लिखा जा सकता।...."

साहब सिंह मेहरा
कोर्ट आफ वार्ड्स कम्पाउन्ड,
अलीगढ़

*

नयी पीढ़ी के जो कवि लोक भाषाओं में साहित्य की रचना कर रहे हैं उन मे अलीगढ़ के प्रगतिशील कवि साहब सिंह मेहरा का एक प्रमुख स्थान है। उन्होंने ब्रज प्रदेश में बोली जाने वाली लोक भाषा में लोक गीतों की रचना करके न केवल उनकी सोई हुई स्वस्थ परम्परा को जागृत किया है वरन् लोक गीतों को एक नई शक्ति और दिशा प्रदान की है। साहबसिंह मेहरा ने ग्रामीण गीतों के लोकप्रिय छन्दों को अपना कर ग्रामीणों की भाषा में ही उनके पास नवयुग का सन्देश और क्रांति व विद्रोह के विचार पहुँचाये हैं।

साहब सिंह मेहरा का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में स्थित नगौला नामक ग्राम में लगभग ३५ वर्ष पूर्व श्रावण शुक्ला दूज सम्वत् १९७६ में एक निम्न मध्यवर्गीय खत्री परिवार में हुआ था। आपके पिता स्वर्गीय लाला प्यारे लाल मेहरा नगौला गांव में एक छोटी सी दूकान किये थे और गल्ले की तुलाई का काम भी करते थे। आपके पूर्वज, जो पहले पंजाब के निवासी थे, मामूली खरीद-फरोख्त का काम तथा तिजारत किया करते थे। साहब सिंह के पिता ने गांव में ही उन्हें उर्दू की शिक्षा शुरू कराई और सन १९३५ में उन्होंने उर्दू मिडिल पास किया। बाद मे साहब सिंह ने उर्दू में 'आलाकाबलियत' और हिन्दी में 'विशारद' की परीक्षायें भी पास की और राजनीतिक आन्दोलन में पड़ कर कई बार जेल जाने पर जेल के भीतर ही अन्य साथियों की मदद से अंग्रेजी का भी मामूली ज्ञान प्राप्त कर लिया। परिवार की आर्थिक अवस्था अत्यन्त हीन होने की वजह से वे उच्च शिक्षा प्राप्त न कर सके।

साहब सिंह बाल विवाह प्रथा के शिकार बने थे। सन् १६३४ में ही जब वे १४ वर्ष की आयु के थे तब ८ वर्ष की एक कन्या से उनका विवाह हो गया था। सन् १६५१ में उन की प्रथम पत्नी की मृत्यु हो गई तब उन्होंने उसी वर्ष एक दूसरी महिला से विवाह किया। उनके दो सन्ताने भी हैं, जो प्रथम पत्नी से ही हैं। साहब सिंह की अब तक की पूरी जिन्दगी घोर आर्थिक अभाव के दौर से गुजरी है। आप का परिवार कभी भी सुखी और सम्पन्न अवस्था में नहीं रहा। अतएव मिडिल पास करते ही आप को अपने फूफा लाला परसादीलाल के पास, जो कि बहुत बड़े रईस और गवरमेन्ट कान्ट्रेक्टर थे, बरेली भेज दिया गया, जहाँ आपने उनके ईंटों के एक भट्ठे में मुन्शीगीरी का काम शुरू किया। यहाँ आप को कुल आठ रुपया प्रतिमाह वेतन के रूप में मिलते थे। साहब सिंह को मानव के शोषण का अपने जीवन में प्रथम अनुभव यहाँ हुआ। दिन में लगभग चौदह घंटे उन्हें काम करना पड़ता था। ऊपर से मालिकों का व्यवहार अत्यन्त शुष्क और कठोर बना रहता था। अतएव अगस्त १६३६ में वे उस काम को छोड़ कर अपने घर लौट आये। तब उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

साहब सिंह का राजनीतिक जीवन सन् १६३६ से ही आरम्भ हो गया था, जब आप बरेली, नवाबगंज में समाजवादियों के साथ कांग्रेस में काम किया करते थे और अपनी तहसील काँग्रेस कमेटी के मन्त्री थे तथा जिला कमेटी के सदस्य। अलीगढ़ लौट आने पर उन्होंने अलीगढ़ जिले के काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं के साथ काम शुरू किया। तभी वे विख्यात कम्यूनिस्ट नेता स्वर्गीय आर० डी० भारद्वाज के सम्पर्क में आये उसके बाद ही आप कम्यूनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये और अलीगढ़ के प्रेस कर्मचारियों के आंदोलन के सम्बन्ध में एक वर्ष के लिए कैद किए गए। जेल से रिहा होने पर आपने किसानों के बीच काम शुरू किया। और बेहटा में अखिल भारतीय किसान सम्मेलन के अधिवेशन में अलीगढ़ के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। तभी आपके पिता का देहान्त हो गया

और आपके ऊपर सारे परिवार का भार आ गया। फलतः अलीगढ़ में आकर आपने ट्यूशनें करनी शुरू कीं। किन्तु सन १६४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में आप सितम्बर १६४२ में पुनः गिरफ्तार कर लिए गए और अगस्त १६४४ तक अलीगढ़ जेल मे नजरबन्द रहे। जब छूट कर आये तब आप की वृद्धा-रुग्णा माँ का भी देहान्त हो गया। लम्बी नजरबन्दी की वजह से आपकी घर की आर्थिक दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो गई थी। पत्नी फाके कर रही थी। उधर सरकार ने आपके ऊपर गांव ही में कैद रहने की पाबन्दी लगा दी थी। किन्तु अन्त मे सरकार से लिखा-पढ़ी करके मई सन् १६४४ में अलीगढ़ शहर आ कर वे कभी किसी पुस्तक विक्रेता या कभी किसी ताले के कारखाने के दफ्तर मे या अन्य कहीं ४० से लेकर ६० रुपये माहवारी पर नौकरियां किया करते थे। किन्तु गुप्त रूप से उनका राजनीतिक-कार्य भी जारी रहता। फरवरी सन १६४६ में महात्मा गांधी के हत्याकाण्ड के बाद आप पुनः तीन महीने के लिए नजरबन्द कर दिये गये। फिर तो प्रांत की कांग्रेसी सरकार के लिए आप इतने खतरनाक प्रतीत हुए कि वह जब चाहती आपको कैद कर लेती। गत ५ वर्षों मे वे ५-६ बार जेल में ठूँसे गए हैं, और इन दिनों भी वे जेल जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

साहब सिंह मेहरा का मत है कि, "लेखकों और साहित्यकारों की जगह आम जनता के बीच मे है। जब तक इस समाज मे बुनियादी तब्दीली नहीं होती तब तक यह ढाँचा बदल नहीं सकता। यदि लेखक अपने को आम जनता से अलग समझेंगे तो उनकी खुद की भी हालत न सुधरेगी। उनकी हालत जनता के साथ ही सुधरेगी। इसलिए सभी साहित्यकारों को कला के माध्यम से जर्जर समाज को बदल डालने के कार्य मे जुट जाना चाहिये।" साहित्य और काव्य के सम्बन्ध में भी साहब सिंह के विचार इसी तरह के हैं। उनका निश्चित मत है कि साहित्य और कला जीवन की सहायक होती है, जिन्दगी का दर्पण होती है। उसे जन-जीवन से अलग रख कर नहीं देखा जा सकता। उन्होंने

स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर यह भी कहा है कि—"संघर्षों से अलग रह कर उत्कृष्ट क्रांतिकारी साहित्य कभी नहीं लिखा जा सकता। मैं स्वयं संघर्षों और आंदोलनों के बीच रह कर ही अधिक व सुन्दर लिख पाता हूँ, अलग रह कर नहीं।" साहब सिंह को काव्य-कला का कोई ज्ञान नहीं है। कविता तो उनके हृदय से स्वतः फूट पड़ी थी, उसे उन्होंने किसी से सीखा नहीं था। लोक भाषाओं में ही जन-साधारण के लिए तथा अपढ़ जनता के और मजदूरों और किसानों के लिए साहित्य लिखा जाना वे श्रेयस्कर मानते हैं। उनका मत है कि, "साहित्य की भाषा जन-साधारण की बोलचाल की ही भाषा होनी चाहिए। जो कुछ लिखा जाये उसके भाव और अर्थ साफ होने चाहिये। अभिव्यक्ति मे पेचीदगी न हो।"

सबसे पहले साहब सिंह ने उर्दू में कविता लिखना आरम्भ किया था। सन १९३४ मे, जब कि वे मिडिल स्कूल मे पढ़ते थे, तब उन्होंने उर्दू में पहली तुकबन्दी की थी। हिन्दी में तो उन्होंने सन १९३८ में लिखना आरम्भ किया। उन्हें बचपन से ही गाने की विशेष रुचि थी और वे ग्राम्य गीतों को बड़े चाव से गाया करते थे। जब उन्होंने स्वयं कविता लिखना आरम्भ किया तो उनका ध्यान ग्राम्य गीतों की ओर गया और उन्होंने ब्रज भाषा मे ग्राम्य गीतों की ही रचना शुरू की। ब्रज के लोक गीतों में 'रसिया' और 'होली' सर्वाधिक लोक प्रिय गीत हैं। साहबसिंह ने इन गीतों की लोक प्रियता को भली भांति अनुभव किया था। इस लिये उन के हृदय में यह उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई कि इन लोक गीतों के भाव और स्वरूपों को परिवर्तित किया जाय और उनके द्वारा परिवर्तित युग के नवीन विचारों को ग्रामीण जनता तक पहुँचाया जाये।

फलतः साहब सिंह ने ब्रज भाषा में ही 'रसिया' और 'होली' लिखने शुरू किए। वे स्वयं एक सुन्दर गायक हैं और उन्होंने अलीगढ़ के एक अन्य विख्यात लोक गीत लेखक श्री खेमसिंह नागर के नेतृत्व में एक गायक मंडली का भी संगठन किया और किसान आन्दोलन के संगठन के

सम्बन्ध में अलीगढ़ तथा आस पास के जिलो के देहातों मे जा-जाकर स्वरचित लोकगीतों को गाना शुरू किया। देहातों मे जैसे एक क्रांति उमड़ पड़ी। सभाओं और भाषणों से अधिक इन गीतों का प्रभाव जनता पर पड़ता। लोकगीतों के क्षेत्र मे ग्रामीण जनता के लिए यह एक अभूतपूर्व परिवर्तन और क्रांति थी। कृष्ण और राधिका के जीवन से सम्बन्धित 'रसिया' और 'होली' के स्थान पर जब ग्रामीण जनता को उनमें अपने जीवन की समस्यायें, महगाई, चोर-बाजारी आदि का चित्रण दिखाई दिया तो वे हजारों की भीड़ में एकत्र होकर उनको सुनते। साहब सिह मेहरा तथा खेमसिंह नागर के लोक गीतों को सुनने के लिए ग्रामीण जनता उतावली हो कर उमड़ पड़ती। भारतीय जन नाट्य संघ के सम्मेलनों मे आगरा, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता आदि बड़े-बड़े नगरों मे भी जनता से खचाखच भरे हुए भवनों मे जब साहब सिंह नाट्य प्रदर्शनों मे अपने लोक गीत गाते तो शहरों की जनता भी रस विभोर हो जाती और भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठते। यही लोक गीतों के प्रभाव और मधुरता का चमत्कार है।

साहब सिह अब तक पर्याप्त लोक गीत लिख चुके है जिनमे 'रसिया' और 'होली' की ही संख्या अधिक है। किन्तु इनके अतिरिक्त भजन, मल्हार, साधारण गीत, तीर्थ यात्रियों के गीत आदि भी उन्होने लिखे है। राजनीतिक आन्दोलनों और गिरफ्तारियों की वजह से साहब सिह को साहित्य सृजन का अधिक अवकाश कभी नहीं मिला पाया। अधिकतर रचनाये उन्होंने जेलों मे ही की है। अभी तक उनके लोक गीतों का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। एक बार बम्बई से जन प्रकाशन गृह ने "धरती के गीत" शीर्षक से हिन्दी के ग्राम्य गीतों का एक छोटा सा संग्रह प्रकाशित किया था जिसमें साहब सिह मेहरा के भी गीत थे। उसके अतिरिक्त हंस, विप्लव, स्वतंत्र भारत, तारा, नवयुग व जनशक्ति आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके काफी लोक गीत प्रकाशित हो चुके हैं। लोक गीतों के अतिरिक्त साहब सिंह मेहरा ने उर्दू में भी काफी

नज्म और गजलें तथा हिन्दी में कुछ लेख और नाटक भी लिखे हैं।

लोक गीतों में एक मुख्य विशेषता यह पाई जाती है कि वे अधिकतर पद्यमय संवादों के रूप में होते हैं। यह संवाद भी बहुधा स्त्रियों के बीच के संवाद होते है। अधिकतर लोक गीतों में यही पाया जाता है कि कोई ग्रामीण युवती या महिला अपनी अन्य सहेली, पड़ोसिन, ननद या देवर के सामने अपने कुछ भाव या मन के उद्‌गार और विचार प्रकट करती है। उन्हीं विचारों को ही लोक गीतों में काव्यबद्ध किया जाता है। साहब सिंह मेहरा के लोक गीतों में भी हम यही विशेषता पाते हैं। इससे उनकी मार्मिकता, सौंदर्य और प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है।

द्वितीय महायुद्ध के समय जब देश पर जापानियों के आक्रमण का खतरा बढ़ गया था उस समय देशवासियों को सचेत करते हुए साहब सिंह ने कई गीत लिखे थे। एक गीत में एक युवती अपनी सहेली से कह रही है—

सावन लागे बहन डरावनो जी, ऐ जी कोई घर अंगना न सुहाय
दुष्ट जापानी भैना मेरे देश पै जी, ऐ जी कोई बम्ब रहे बरसाय
लाखुन भैना विधवा है रहीं जी, ऐ जी मोइ कैसे गान सुहाय'

तब एक अन्य गीत में साहब सिंह ने जापान को चेतावनी दी थी—

पग मत दीजो मेरे देस में ऐरे सुन ले रे बैरी जापान
तेरे बचन न पावेंगे प्रान

इस प्रकार एक अन्य रसिया में एक ग्रामीण स्त्री ने चेतावनी दी थी—

मेरी चौखट पै धरि पांव अधरमी नफा न पावैगो
बालम सोय रह्यो अगना में जो सुन पावैगो
लैके पैंजा हाथ मार तेरी खाल उड़ावैगो
नाज, दार, चावर ते जो तू हाथ लगावैगो
देवर चतुर सुजान नार तेरी धर के दाबैगो

उन्हीं दिनों जब बंगाल में महा विनाशकारी अकाल पड़ा तब साहब सिंह ने बंगाल वासियों की सहायता के लिये प्रबल प्रयत्न किये

और बंगाल की दुर्दशा के प्रति देशवासियों का ध्यान आकर्षित करते हुये एक ग्रामीण स्त्री के शब्दों में कहा कि—

बहन मेरी घर घर में चरचा है रही बंगाले में परौ है अकाल
लासुन ते घर भरि गये बिलखत डोलें लाल

फासिस्ट अधिनायक हिटलर के विरुद्ध एक ग्रामीण स्त्री के हृदय की घृणा और क्रोध को साहब सिंह ने इस प्रकार प्रकट किया था—

बहन मेरी हिटलर बैरी है गयो, जाने दीये है जुलम गुजार
स्वारथ में अन्धो भयौ, जाने डारे हैं बादर फार
माय निपूती जाने कर दई बिन पिय तड़पत नार

महात्मा गांधी को जेल से रिहा कराने के लिये एक होली में साहब सिंह ने देशवासियों से अपील की थी—

गांधी कूं बेगि छुड़ाओ गोरी

और मजदूर-किसानों के लाल झन्डे के प्रति शोषितों के अनुराग को इस प्रकार प्रदर्शित किया था—

वारे देवरा मैं तेरे काजें लाल झंडा लै आई
लीजो याई ते नेह लगाय
यह झंडा मेरे मन बसो, दीजो जान की होड़ लगाय

गुलामी की यातनाओं और आजादी की भावनाओं का चित्रण साहब सिंह ने एक किसान और उसकी स्त्री के बीच पारस्परिक संवाद द्वारा इस प्रकार किया था—

बैरी कब हाय राज सुराज बलम मैं तो लंहगा बिन नंगी फिर रही
कोठिन कपड़ा भरि रह्यो, खत्तिनु भरि रह्यो नाज
दुसमन कपड़ा चोर पै जाने का दिन टूटैगी गाज। बलम

× × ×

होन दे अपनौ राज कौंधनी सौने की गढ़वाय लैयो

किन्तु जब कांग्रेस और लीग के नेता वायसराय लार्ड वावेल को पंच बना कर आजादी प्राप्त करने की समझौता-वार्ता करते थे तब साहबसिंह

अत्यन्त खीझ कर कह उठते थे—

क्यों त्यारी अकल गई बौराय विदेसी पंच बनाये हैं
भैया भैया सदा आज तक इननु लड़ाये हैं
बये फूट के बीज सदा फल मीठे खाये हैं
भारत के घर घर में जलियां बाग बनाये हैं

और जब समझौते का प्रस्ताव लेकर क्रिप्स मिशन देश में आया था तब एक 'रसिया' में अत्यन्त व्यग्य पूर्ण वाणी में साहब सिंह ने कहा था—

मैंने सुनी बलम भारत कूं दै दयो अंग्रेजुन ने राज
लंदन ते आजादी लेकर आयौ एक जहाज
अपने आप खुसामद करके दै गयौ राज सुराज

इसलिये एक अन्य रसिया में उन्होंने देश के किसानों से अपील की थी—

अब ना बखतु रह्यौ सोइबे कौ आंखें खोलौ वीर किसान
चीन देस के जगे पड़ोसी कहाँ तुम्हारौ ध्यान ?

और फिर नाविक विद्रोह को देख कर एक होली मे वे गा उठे थे—

आज हमारी बारी रे बिदेसिया
हरे हरे खेत उजरि गए सबरे, कर दियौ देस भिखारी।
अब हम फूंकि दैंय तेरी लंका धक धक जरे अटारी। रे विदे०

फिर वे ललकार उठे थे—

भागौ भागौ रे फिरंगिया, भाजौगे कै नाय ?

और जो देशवासी हाथ पर हाथ रखे खामोश बैठे थे और देश की आजादी की लड़ाई में सहयोग नहीं दे रहे थे उनसे साहब सिंह ने कहा था—

ओ सौना की भाभी तू क्यों बैठी चुप्प कुठरिया में
पौ फाटी भये बादर पीरे, लगि रई आगि अँधिरिया में

इसी प्रकार देश मे उठती हुई जन क्रांति की बलवती भावना को

जो कि देश व्यापी मजदूरों व कर्मचारियों की हड़तालों तथा पुलिस और फौज के आंदोलनों के रूप में प्रकट हो रही थी साहब सिंह ने बड़े सुन्दर और वास्तविक रूप में एक होली मे इन शब्दों में चित्रित किया था—

आज उठे झकझोर जोर दै सब मजदूर किसान

फिर जब देश को तथाकथित आजादी मिल गई तो उसके वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हुए साहब सिह ने एक 'रसिया' में देश की जनता को आगाह किया—

भैया धोके में मति अइयौ सुन सुन आजादी के बाल
भली मिली हम कूं आजादी होन लगी उल्टी बरबादी
दुसमन ते करि मेल अधरमिनु दयो रस में विष घोल

आजादी मिलने के बाद कांग्रेसी सरकारों ने देश भर में मजदूरों-किसानों और उनके नेताओं का जो घोर दमन किया, उसकी वजह से नेहरू सरकार के जन-विरोधी स्वरूप को स्पष्ट करते हुये साहब सिह ने लिखा—

लाठी गोली प्यार की, जै नेहरू सरकार की
अमरीका स्वागत को आया, नेहरूजी ने हाथ मिलाया
बिरलाजी ने शीश झुकाया, मजदूरों का गला दबाया
कदर बड़ी बाजार की, जै नेहरू सरकार की

किन्तु साहब सिह को देश के भविष्य के प्रति दृढ़ विश्वास है। उन का निश्चित मत है कि इस देश से शीघ्र ही पूंजीवाद और सामंतवाद पूरी तरह से खतम होंगे और एक वर्गहीन शोषणहीन सुखी समाज की स्थापना होगी। तभी उन्होंने लिखा है—

सबको राम नाम सत होगी, चगाई की सी गत होगी
धरती के नीचे छत होगी, जीत हमारी निश्चित होगी
हमें न चिन्ता हार की, जै नेहरू सरकार की

और उन्होंने अमरीका तथा अन्य युद्ध लोलुप साम्राज्यवादी राष्ट्रों को साफ शब्दों मे चेतावनी दी है—

ओ जंगखोरो
ओ जंगबाजो
मानव के लोहू के प्यासो
आज कोरिया नहीं अकेला
सब हिसाब चुकता कर लेंगे
पाई - पाई, धेला - धेला

× × ×

घड़ा पाप का भरा तुम्हारा
जंग से नाता तोड़ो तोड़ो
नहीं कोरिया, नहीं एशिया, सारी दुनिया छोड़ो।

यही साहब सिंह मेहरा के सजग-विद्रोही लोक-गीतकार कवि का मुख्य स्वरूप है। उनमें विकास और प्रगति के दृढ़ अंकुर है। आशा है वे लोक गीतों के भंडार को इसी प्रकार नवयुग की आवश्यकतानुसार समृद्धिशाली बनाते रहेंगे और नये भविष्य की अगवाई के लिए प्रयत्न-शील रहेंगे।

———

१४

रमानाथ अवस्थी

"मैं चाहता हूँ कि कविता के माध्यम से उन लोगों को जीने के लिए प्रेरित कर सकूँ जो जीने के लिए तरस रहे हैं।"

रमानाथ अवस्थी
३२८, बादशाही मण्डी
इलाहाबाद

*

"आज कविता नये रास्ते पर है। इस राह पर चलकर कविता कहाँ पहुँचेगी, इसका उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं है।"—इस प्रकार नयी कविता को एक लक्ष्यहीन मार्ग पर भटकती हुई मानने वाले, यह हैं नयी पीढ़ी के हमारे तरुण गीतकार श्री रमानाथ अवस्थी, जिनकी रचनाओं में भी उनके इस कथन की छाप पड़ी है। वे आज के उन नये गीतकारों में से हैं, जिन्होंने अपने जीवन के थोड़े से काल में साहित्य की लघु साधना से ही विस्तृत ख्याति प्राप्त करली है।

त्रिवेणी के पवित्र संगम पर बसे भारत की संस्कृति और हिन्दी साहित्य के केन्द्र प्रयाग के निवासी रमानाथ अवस्थी का जन्म आज से २७ वर्ष पूर्व २ दिसम्बर सन १६२६ को उत्तर प्रदेश के फतेहपुर नामक जिले के अन्तर्गत लालीपुर ग्राम में एक अत्यन्त साधारण कृषक परिवार में हुआ था। गांव के वातावरण और मिट्टी-धूप में ही आप पाले-पोसे गये, और वहीं आप को प्राइमरी शिक्षा मिली। सरस्वती का वरदान आपको पैतृक ऋण के रूप में प्राप्त हुआ, क्योंकि आपके पिता श्री जग मोहन नाथ अवस्थी स्वयं हिन्दी के ख्यातिनामा "आशुकवि" हैं, जो आज कल लखनऊ सचिवालय में उत्तर प्रदेशीय सूचना विभाग में कार्य कर रहे हैं। किशोर रमानाथ जिस समय फतेहपुर में हाई स्कूल की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तभी उन्होंने प्रथम कविता लिखी, और उसी वर्ष, १६४५ में ही, पहली बार उनकी रचना दिल्ली के "नवयुग" साप्ताहिक में प्रकाशित हुई। युद्धोत्तर विभीषिका और परिवार की साधारण आर्थिक अवस्था ने आपको केवल इन्टरमीडिएट तक ही शिक्षा ग्रहण करने के बाद

नौकरी करने के लिए विवश किया। आप पत्रकार बने, और १६४८-४६ में दो वर्ष प्रयाग के 'देशदूत' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने के पश्चात उसके बन्द होने पर सन १६५० में 'संगम' साप्ताहिक पत्र मे चले गए और उसके बन्द होने तक उसमें काम किया। किन्तु इस बीच आपका लिखने का क्रम बराबर जारी रहा और अब तक आप के दो कविता संग्रह "सुमन-सौरभ" तथा "आग और पराग" के नाम से हिन्दी जगत के सामने आ चुके हैं। इनके अतिरिक्त पचास अन्य कविताओं का एक अप्रकाशित सग्रह भी अभी आपके पास है।

नयी पीढ़ी के कुछ कवियों पर प्रसाद, पंत, निराला, बच्चन आदि हिन्दी कवियों और वर्ड्सवर्थ, शैली आदि अंग्रेजी कवियों का विशेष प्रभाव पड़ा है। हिन्दी में गीत लिखने की परम्परा ही इस प्रभाव से आरम्भ हुई है। रमानाथ अवस्थी भी अपने ऊपर इस प्रभाव को स्वीकार करते है। किन्तु, उन्हें मीरा और तुलसी जसे भक्त कवियों ने विशेष आकर्षित किया है। मीरा से उन्होंने प्रेम की तन्मयता के गीत गाना सीखा है और तुलसी से जीवन की विराटता के दर्शन करना। यद्यपि रमानाथ का व्यक्तिगत जीवन आर्थिक अभाव और सघर्ष में ही पला है, किन्तु उनकी विचारधारा और रचनाओं मे उसका कोई प्रभाव नहीं है। वे जीवन के भौतिक विकास को गौण तथा बौद्धिक विकास को मुख्य मानते है। वे चाहते हैं कि कविता ऐसी हो जो समाज को भौतिक वेदना तथा कटु संघर्ष से अलग हटा कर उसका केवल आत्मिक विकास करे। रमानाथ के यह विचार अनोखे नही है। वर्तमान पूंजीवादी भारतीय समाज तथा प्राचीन अध्यात्मवादी परम्परा ने हिन्दी के तमाम कवियों और लेखकों पर यह प्रभाव डाला है। यद्यपि यह एक महान सत्य है कि देह अथवा शरीर के बिना मन अथवा आत्मा का कोई अस्तित्व ही नहीं है, किन्तु फिर भी शोषणवादी विचारक शरीर से पहले मन को महत्व प्रदान कर भौतिक विकास अथवा सुख के बजाय आत्मिक विकास और सुख को मुख्य बताते है, ताकि सर्व साधारण जनता भौतिक संघर्ष

से मुख मोड़ ले और समाज मे शोषण तथा दोहन जारी रहे। इस विचारधारा का उन कवियों और लेखकों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है जो यह मानते है कि कविता तथा साहित्य केवल आत्मिक विकास का साधन है और मानव के भौतिक विकास से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। रमानाथ भी इसी विचार के पक्षपाती है। किन्तु इतना ही नहीं। इसी विचारधारा की आड़ में जब वे कहते हैं कि—

वह संध्या कभी प्रभात न हो
जब स्वर्ण पिघल कर पश्चिम की
प्याली से गिर घर-घर आया

तब उनका वास्तविक रूप सामने आ जाता है। वे संध्या के उपासक है, प्रभात के नहीं। एक ओर तो वे कोरे बौद्धिक विकास को महत्व देते हैं, और दूसरी ओर पश्चिम के पूँजीवादी देशों के अवदान को स्वर्ण मान कर उसकी उपासना करते है।

पश्चिम के इस पूंजीवादी-शोषणवादी अवदान तथा जीवन की इस संध्या का प्रभाव रमानाथ पर ही नहीं, जब आजकल मुझे चोटी पर के कवियों पर पड़ा है, जिन्हें इस भूखे-नंगे देश में चारों ओर सोना ही सोना दिखाई देता है, तब उन्हीं के नीचे पनपने वाले नये तरुण कवि अछूते कैसे रहते? वास्तव में स्वर्ण की वर्षा तो पूर्व से सवेरा होने पर ही होती है, जिसका हम चीन के जन-जीवन में स्पष्ट आभास भी पा रहे हैं। पर खेद की बात है कि कुछ तरुण कवि इस सत्य से आंखे बन्द किए है।

रमानाथ वर्तमान समाज की समस्याओं और संघर्षों से दूर हैं और उनकी समस्त रचनाये भी। यद्यपि साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है, यानी हम साहित्य मे समाज और जीवन का प्रतिबिम्ब पाते हैं, किन्तु वर्तमान हिन्दी साहित्य में, विशेषतया कविता साहित्य में रोमान्स वाद का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा है कि उसमें साहित्यिक "मजनुओं और फरहादों" के मन की आहें, अतृप्त कामनायें और वासना का ही हम

अधिक प्रतिबिम्ब पाते हैं। समस्त रोमान्सवादी साहित्य मानसिक विकारों का प्रतिनिधित्व करता है। रमानाथ भी रोमान्स और प्रेम के गायक हैं। उनकी रचनाओं में उनके व्यक्ति और स्वानुभवों का प्रतिबिम्ब है। उनके जीवन का अधूरा प्रणय सम्बन्ध जगह जगह पर उनकी कविताओं और गीतों में प्रगट हुआ है। किन्तु वे इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि उन्होंने अपने प्रणय सम्बन्ध से प्रभावित होकर कभी कोई कविता नहीं लिखी। किन्तु उनका यह कथन कहाँ तक सत्य है यह उनकी रचनाओं को पढ़ कर भलीभाँति जाना जा सकता है। वे स्पष्ट यह कामना प्रगट करते है कि—

प्रिय मुझको बन्दी रहने दो
युग युग तक निज उर आंगन में

अथवा— सखि इच्छाओं की रानी बन
साथ रहो एकाकी पन में

अथवा— पास आओ प्यार कर लूँ
दो नयन हैं चार कर लूँ

स्पष्ट है कि वे यह सारी कामनायें अपनी प्रिय के प्रति ही प्रगट कर रहें है। इन कामनाओं के अतिरिक्त रमानाथ अपनी प्रिय को यह भी सूचित करते हैं कि—

मैं तुम्हारे दर्शन का प्यासा राहगीर हूँ

अथवा—मैं चिता पर भी न भूलूंगा तुम्हारी शर्बती मुस्कान

जो शर्बती मुस्कान मरने के बाद चिता पर जलने के समय भी न भूले वह प्रेमिका की नहीं तो और किस की होगी? इतने पर भी पता नही रमानाथ यह स्वीकार करने मे इतनी साहसहीनता क्यों दिखाते है कि उनके गीतों मे उनके प्रणय सम्बन्ध का स्पष्ट प्रभाव है। किन्तु नही, अनजान मे वे इसे स्वीकार कर भी गये हैं। उन्होंने घोषणा की है—

और गीतों में हृदय का प्यार बन्दी है

कवि के तन-मन को उसके प्रिय का यौवन जला रहा है—

मेरा तन-मन जला रहा है यौवन का अंगार तुम्हारा

और उसे प्रिय को प्राप्त करने की बहुत बड़ी परवाह है—

प्रिय हमारे औ तुम्हारे बीच यह दुनियाँ खड़ी है,
पर तुम्हारी प्राप्ति की परवाह इससे भी बड़ी है

जिस प्यार की कवि को इतनी परवाह है उसकी उसने परिभाषा भी दी है। वह कहता है—

दुनियाँ का श्रृंगार न होता यदि जीवन में प्यार न होता

अथवा—प्यार सब कुछ, किन्तु पागलपन नहीं है
प्यार पा कर उठ गया है मृत्यु से विश्वास
मैं तरुण आकाश साथी, मैं तरुण आकाश

इस प्रकार कवि केवल अपने प्यार की परिभाषा करने तथा प्रणय सम्बन्ध को चित्रित करने में ही मग्न रहता है। उसे अपने से बाहर की दुनियाँ की विशेष परवाह नहीं है। रमानाथ का कवि घोर व्यक्तिवादी और अहम्वादी है। "मैं और तुम" की सीमा से बाहर निकल कर समष्टि के दर्शन या चित्रण करने की चेष्टा उसने नहीं की। वह आकाश, बादल चाँद, तारे और फूलों से ही बातें किया करता है, यही उसकी कविता और गीतों के प्रिय विषय भी हैं। वह इस धरती और जीवन की बातें कम करता है। रोमान्स के अतिरिक्त जैसे रमानाथ के कवि को वर्तमान समाज और जीवन में अन्य कोई समस्या नजर नहीं आती। यद्यपि उसने "सच मानो मुझ को ज्ञात नहीं", "इतना तो समझाओ कोई" और "कोई न मिला जो समझाता" शीर्षक गीतों में अपनी अनभिज्ञता और भोलापन प्रकट करने के प्रयत्न किए हैं, किन्तु वास्तव में वह अनभिज्ञ और भोला है नहीं। उसे समाज की समस्याओं का ज्ञान अवश्य है, किन्तु वह उनकी ओर से आँखें बन्द किए रहता है। वह केवल "मैं और तुम" की विवेचना में ही लगा रहता है। रमानाथ ने इस प्रकार के तमाम गीत लिखें हैं जिनमें उन्होंने स्वयं अपने आप की तथा अपने प्रिय की व्याख्यायें की हैं। और चूँकि उसका प्रिय उसे प्राप्त नहीं हुआ

है और अब न उसके मिलन की कोई आशा ही उसके हृदय में शेष है, इसलिए उसकी निराशा और बेबसी उसके गीतों में फूट पड़ी है। वह कहता है—

सुबह तक जलता हुआ चिराग, रात भर जागा हुआ सुहाग
मुझे समझाता बारम्बार, अन्त में हाथ रहेगी आग

और वह अपने जैसे ही निराश तथा थके-हारे व्यक्तियों को प्यार करता है और स्पष्ट बताता है कि—

मैं प्यार उन्हें करता हूँ जिनके चरण पंथ से हारे

इस निराशा ने रमानाथ के कवि को भाग्यवादी तथा मृत्यु पर विश्वास करने वाला बना दिया है। वह जगह जगह पर कहता है—

आदमी ने जो बनाया, काल ने वह सब मिटाया

अथवा—जीवन मिला जिस पर नशा है मौत का छाया हुआ

अथवा— मृत्यु की काया छिपी हर देह धारी में
जी रहा हर एक मरने की तयारी में

किन्तु कवि इतना ही कह कर संतोष नहीं कर लेता। वह आगे चल कर स्पष्ट कहता है कि उसे जीवन में कोई विश्वास ही नहीं रहा है—

जीवन है मरण की भूल

जीवन से उठा विश्वास, पा कर मृत्यु का आभास

इसी निराशावादी तथा मृत्युवादी विचार धारा ने इस तरुण कवि को स्वयं अपने आप को असफल तक कहने को विवश कर दिया है और ऐसी अकर्मण्यता उत्पन्न की है जिसकी वजह से वह इस असफलता को ही प्यार करने लगा है—

क्या अचरज बन फूल न भर पाया सौरभ से मानव मन
जब दिल की खुशबू देकर भी मैं भर न सका जग का आँगन
असफलता तो लाचारी है, लेकिन मुझ को वह प्यारी है

यही इस प्रणयी कवि की शोचनीय स्थिति है।

किन्तु इसके अतिरिक्त रमानाथ के कवि का एक दूसरा पहलू भी है।

वह धर्म अथवा जाति-पाँति के भेद भाव को स्वीकार नहीं करता। वह यह भी जानता है कि धर्म के नाम पर आज के शोषणवादी समाज में कितना घोर अनाचार और पापाचार फैला हुआ है। तभी वह स्पष्ट कहता है—

मैं न पूजा कर सका उस देवता की जो न पाया तोड़ मजहब
की जंजीरें
और जिसके पूजने पर भी न मिटती, आदमी के भाग्य की
काली लकीरें
धर्म मेरा है वही जो आदमी को आदमी के वास्ते जीना सिखादे
और पंडित, पादरी, औ मौलवी को एक ही घट में अमृत
पीना सिखादे
मैं न मन्दिर और मस्जिद में गया माथा पटकने
क्योंकि मैंने पा लिया है देव-दानव आदमी की बोलती तस्वीर में

कभी कभी रमानाथ का कवि अपने कर्तव्य की भी बात सोचने लगता है। तब उसे समाज के भी सुख दुख की याद आती है और उसमे त्याग की सी भावना आ जाती है। तब वह कहता है—

चाहता हूं मैं करूँ मुझ को मिला जो काम
छोड़ कर चिन्ता मिलेगा क्या मुझे परिणाम
मैं सुखी होकर स्वयं भूलूं न जग का क्लेश
जो दुखों का अन्त कर दे, दूं वही सन्देश
मैं दुखों की शक्ति को स्वीकार करता हूँ
क्योंकि दुखियों को गले का हार करता हूँ

इस प्रकार हम रमानाथ के भीतर छिपे हुये एक संवेदनशील कवि का भी आभास पाते हैं। किन्तु उसके ऊपर प्रणय और रोमान्स की मोटी तह जमी हुई है। यदि यह मोटी तह कट जाय तो रमानाथ के भीतर छिपे हुए इस सुन्दर कवि को विकास करने का अवसर अवश्य मिलेगा। क्योंकि वह खुद कहता है—

फूल की तरह जियो औ' मरौ सदा इन्सान
दीप की तरह जलो तम हरो सदा इन्सान
..चांद की तरह जलन तुम हरो सदा इन्सान
मेघ की तरह प्यास तुम हरो सदा इन्सान

बस आवश्यकता इस बात की है कि कवि उपदेशक न बन कर स्वयं आचरणशील बने और उसकी रचनाओं की पंक्ति-पंक्ति में जीवन, आशा और सुख का यही अमर सन्देश रहे। कवि कोरे रेशमी प्रणय की डगर से हट कर कर्तव्य और संघर्ष की डगर पर चल कर इन शब्दों को दुहराये कि—

चलता हूँ चलता जाऊँगा जब तक तन में प्राण है
मुझ को अपने पावों की ही गति पर बड़ा गुमान है

जब कवि यह गाने लगेगा तब वह आहों, उच्छ्वासों और चांद तारों मे ही नहीं उलझा रहेगा, वरन् धरती के राग गायेगा और समाज को आलोक प्रदान करेगा। हमें इस कवि से यही आशा है, क्योंकि उसमे एक गहरी प्रतिभा है। और यह प्रतिभा इतनी प्रबल है कि उसमें कुछ कर गुजरने की क्षमता है। लेकिन कुछ कर सकने के योग्य बनने के पहले उसे प्रतिक्रिया के उस प्रभाव से मुक्त होना पड़ेगा, जो उसके जीवन को लपेटे हुए है।

रमानाथ भाषा और शब्दों के शिल्पी है। वे शब्द गढ़ते नही है किन्तु अपने भावों और विचारों को इतने सरल, बोधगम्य और सुन्दर तथा कोमल शब्दों मे चुन कर कहते है कि उसके माधुर्य और लालित्य मे चार चाँद लग जाते है। उनके काव्य की भाषा बड़ी सरल और स्पष्ट है। यह बड़ी भारी खूबी है। वे सरल से सरल बात कहने मे भी अनोखा चमत्कार और माधुर्य प्रदर्शित करते हैं, जैसे—

"तोते की रंग सी साड़ी बरसात पहन जब आये"
अथवा—"और प्रकृति के प्रेम पत्र जब पंछी मिल कर बांचे"
अथवा—"किन्तु समय की सांस रोकना सबके लिये कठिन है"

अथवा-किन्तु ऐसी क्या हुई वह बात जो कि काली रह गई यह रात

किन्तु इन सुन्दर और कोमल अभिव्यंजनाओं के साथ ही रमानाथ की भाषा में कहीं कहीं दोष भी पाये जाते हैं। कुछ स्थलों में उन्हें लिंग भेद का ध्यान नहीं रहा है। जैसे गंगा, जमुना तथा आग को स्त्री लिंग के बजाय क्रियाओं में पुल्लिंग लिख गये हैं—

मैंने सब को गंगा जमुना दे डाला
पर फिर भी सबने आग हृदय में पाला

इसी प्रकार रात और बरसात को भी वे पुल्लिंग क्रिया में ही प्रयोग कर गये है। जैसे—

खो डाला है रोकर गाकर कितनी ही चांदी की रातें
आंखों में ही रोका मैंने सावन सी अनगिन बरसातें

रमानाथ के तरुण कवि का यही मुख्य परिचय है जो अभी तक अन्धकार से निकल कर अपने पंथ का निर्माण नहीं कर पाया है, किन्तु अभी उसकी खोज में ही है—

खोज रहा हूँ पंथ प्रात का मैं रजनी के सूनेपन में

इस प्रकार यह तरुण कवि अभी भटका हुआ है। विभ्रम में है। न तो वह नयी कविता के लक्ष्य को जान पाया है और न स्वयं अपना ही पथ खोज पाया है। इसका एक ही कारण है कि यह कवि अभी अपने ही में सीमित है। उसके भीतर अभी उस विशाल संवेदना का अभाव है जो किसी भी कवि को सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक बनाती है। यद्यपि रमानाथ को साम्यवाद से आस्था है, लेकिन शायद केवल फैशन वश। एक सच्चे साम्यवादी की कल्पना पूर्ण मानव के रूप में की गई है और वैसा बनने के लिए किसी भी व्यक्ति को सबसे पहले स्वांतः की अनुभूति से उठ कर परान्तः की अनुभूति को विकसित करना पड़ता है। रमानाथ को भी वही करना होगा। तभी उनके सामने से विभ्रम का यह वर्तमान परदा हटेगा, अन्यथा नहीं। आज की हिन्दी कविता लक्ष्य हीन पथ पर अग्रसर नहीं हो रही है, बल्कि उसके सामने दो ही साफ रास्ते

हैं—एक तो पूंजी और रूढ़िगत परम्परा की दासताओं को तोड़ कर नये सुखी भविष्य के निर्माण का पथ, जिस पर चलने वाला हर व्यक्ति इंसान होता है जो जीवन और आशा के राग गाता है, और दूसरा पथ है पूंजी और रूढ़ियों की दासता का, जिस पर मौत है, विनाश है, छल-प्रपंच है। पहले पथ पर चल कर ही कविता मानव-कल्याण के लक्ष्य तक पहुँच सकती है। वही प्रातः का पंथ है, जिसे रमानाथ अभी खोज रहे हैं, किन्तु जिसे आज के सर्वहारा मानव ने पा लिया है। इसी पथ पर चल कर न केवल कविता ही सतत् विकासमान रहेगी, वरन् यही वह पथ है जिसमे हम एक ऐसे लक्ष्य पर पहुँचेंगे जहाँ प्यार पाप न माना जाएगा, जहाँ युवक-युवतियों के प्रणय सम्बन्ध अधूरे न टूटेंगे और जहाँ प्यार के लिए आत्महत्यायें न करनी पड़ेंगी। आज की नयी कविता इस पथ की ओर चरण रख चुकी है। जरूरत इस बात की है कि हम आँखों पर से धुंध और कुहासे को साफ कर दें तभी इस लक्ष्य को देख पायेंगे।

रमानाथ के जीवन की केवल मात्र महत्वाकाँक्षा है—"कविता के माध्यम से उन लोगों को जीने के लिए प्रेरित कर सकूं जो जीने के लिए तरस रहे हैं।" उन्हें कवि गोष्ठियों पर अधिक विश्वास है, किन्तु वे बड़े कवि सम्मेलनों में अकसर भाग लेते हैं, क्योंकि एक तो वे उनको आमदनी के एक साधन है और दूसरे यह कि, वे उन्हे इस माने में उपयोगी मानते है कि हिन्दी के श्रेष्ठतम कवियों को उनमें बुलाया जाया करे। वे सक्रिय राजनीति से सर्वथा दूर है, किन्तु साम्यवाद को वे जीवन का आदर्श मानते है और अपनी उस पर आस्था बताते हैं तथा कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होने की इच्छा भी उनके मन मे है।